Contents

रक्षा बंधन की कथा 2
अकम्पन आचार्य का मुनि संघ सहित उज्जैन आगमन....3
मंत्री श्रुतसागर संवाद 5
चारों मंत्रियों की विक्षिप्त दशा....17
मंत्रियों का हस्तिनापुर में आगमन....26
राजा पद्म राय से सम्मान एवं पद पाना 28
हस्तिनापुर में चातुर्मास स्थापना....30
वर स्वरूप ७ दिवस को राज्य की प्राप्ति 33
स्वर्ग में इंद्र सभा....36
विष्णुकुमार मुनिराज का हस्तिनापुर आगमन....37
मंत्रियों का दू:स्वप्न 39
जिनशासन प्रभावना का दिवस श्रावण सुदी पूनम 41
आहारचर्या एवं परिचर्या....49
पद्मराय की पीड़ा 51
विष्णु कुमार का प्रायश्चित्त एवं मोक्ष गमन....52
पर्व और वर्तमान मूल्यांकन 55
वात्सल्य पर्व का सार्वजनिक रूप....55
रक्षा बंधन एवं कर्तव्य....55
शासन प्रभावना कैसे करें ? 56
निम्न लोक मूढ़ता से बचें....56
इस कथा से शिक्षायें – 57
वात्सल्य अंग....57
निर्ग्रन्थता 57
श्री रक्षाबंधन पर्व भक्ति 58
आरती 59
रक्षाबंधन कथा --------------------स्व.कवि नाथूराम लमेचु....60
भाव रक्षा बंधन - ओ भैया मेरे स्वानुभूति प्रगटाना, ...68
कैसा बंधन कैसी रक्षा ? 69
जय – जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार। 69

रक्षाबंधन कथा की विसंगतियाँ- ……………………………………………………………………………………………70

रक्षा बंधन की कथा

पापों में लिप्त रहने से पाप का बंध होता है। जिन्होंने धर्मार्जन किया है, वे अभी भी प्रसिद्ध हैं। अहिंसा में धर्मराज युधिष्टर, सत्य में कर्ण, अचौर्य में अर्जुन, शौच में गंगेय और अपरिग्रह में रामचंद्र जी प्रसिद्ध है, इनका वर्णन पुरानों में आता है।

अनादी से वस्तु स्वरूप का अज्ञान रहा है अतः सत्मार्ग के विरोधी भी रहे हैं। प्रत्येक जीव को भासित होने वाला ज्ञान ही स्वयं को केवलीवत भासता है। वह स्वयं अपने आप में एक धर्म सृष्टा-विधाता बन बैठता है। अतः चतुर्थ काल में भी जिनधर्म अर्थात वस्तु स्वभाव के विरोधियों का वहुमत रहा है। राज्याश्रय पाकर सदा की भांति वह फलता-फूलता रहा है। फिर राजा पर यदि प्रभाव जमा लिया हो तो वह क्या-२ कुकर्म नहीं कर बैठता है।

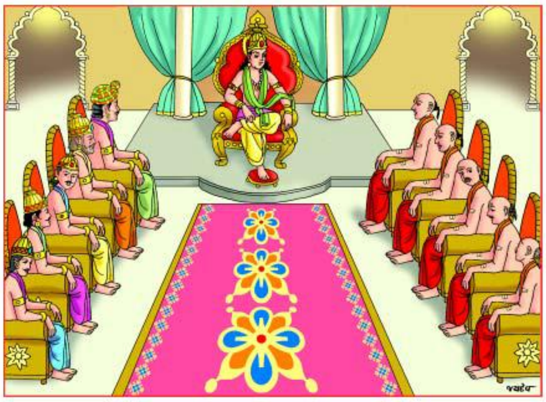

जिनधर्म सेवी पवित्र मुनि भगवंतों पर उपसर्गों की असंख्य कथाओं में से अत्यंत हृदय द्रावी कथा के रूप में प्रसिद्ध है यह कथा जिसमें ७०० मुनिराजो की रक्षा करने का विवरण मिलता है।

ती.मल्लिनाथ एवं मुनिसुव्रत स्वामी के बीच के शासन काल में मालव देश की राजधानी उज्जैनी जैसी धर्म प्राण नगरी में राजा श्रीधर्मा और उनकी रानी श्रीमती का राज्य था।

उज्जैनी राज्य के राज पुरोहित विप्र श्रीदेव एवं उनकी प्राण प्रिया धर्मात्मा सरल करुणा मूर्ति पत्नी देवकी से प्रसूत वहु प्रसिद्ध पुत्र बलि, नमुचि, प्रह्लाद, एवं बृहस्पति आदि ४ मंत्री थे।

अकम्पन आचार्य का मुनि संघ सहित उज्जैन आगमन

एक वार नगर के उपवन में आचार्य अकम्पन आदि ७०० मुनिराजों का श्रीसंघ विहार करता हुआ आ तिष्ठा। उनके चरणों के श्री प्रसाद से वन की शोभा अवर्णनीय हो गई। ऐसा सुंदर दृश्य देखकर वनपाल के आनन्द की सीमा न रही। वह दौड़ा-२ आया और राज दरवार में आकर पुकार लगा-२कर राजन को प्रणाम करने के उपरान्त अत्यंत प्रसन्नता से निवेदन करने लगा। एक अद्भुत आनन्द का समाचार दिया जिसे सुनकर सब ही हर्ष-तुमुलनाद करने लगे।

वनपाल - राजन ! आज मैंने जंगल में अद्भुत दृश्य देखा सर्व ऋतुओं के फल फूल एक साथ खिल गये... पके फल फूलों की सुगंध तो मैंने ऐसी कभी देखी सुनी नहीं। हे स्वामी ! आप चलिए... सब ही विस्मित होकर सुन रहे थे...

राजन श्रीधर्मा – भाई ! ज़रा साता तो ले लो... ऐसा क्या हुआ जो तुम भावोन्मत्त हो रहे हो ?

वनपाल – (अत्यंत आश्चर्य भरे भावों से) ज़रा आप चल कर तो देखो; वहां सिंहनी एवं गाय एक साथ खेल रहें हैं। दोनों एक दुसरे के बच्चों को वात्सल्य से दुलार रही थीं। नागिन, मयूर एवं नेवला जाति विरोधी भाव भूलकर कैसे खेल रहें हैं।

श्रीधर्मा ने समाचार सुनते ही प्रसन्नता पूर्वक वनपाल को गले में पड़े गज मोतियों का कीमती हार भेंट कर दिया और नगर में घोषणा करा दी सर्व प्रजाजन आचार्य अकंपन आदि ७०० मुनिराजों के दर्शन पूजन श्रवण के लिए सोत्सव् चले।

बाली – (क्षुभित हो) परन्तु महाराज ! अपना वैदिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। सर्व सौख्यकारी धर्म का मूल तो वेद है, श्रुति वेद हैं, धर्म शास्त्र, स्मृतियाँ, एवं मीमांसा का सुंदर करंड तो साक्षात् अपना धर्म ही है। हमें जैनों के

चक्कर में क्यों पड़ना चाहिए। इन नंगों के पास है ही क्या... यदि आप प्रतिदिन वेद पुराण का अभ्यास करें तो आप भी प्रभु पादप्रिय हो जायेंगें। फिर आपको संसार का कोई भी दुःख नहीं रहेगा...आप साक्षात बैकुंठ में ठाकुर ठकुरानी के सेवक बनने का सोभाग्य पा सकेगें। इससे बढ़कर किसी मानव का सोभाग्य क्या हो सकता है !

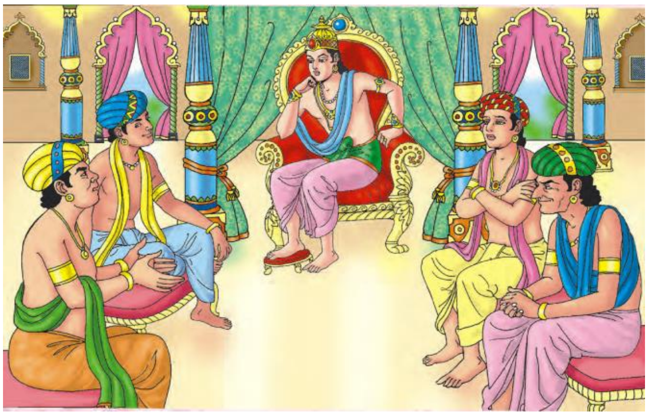

श्रीधर्मा - लेकिन राज्य में तो सब ही धर्मो धर्मियों के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए। अतः मैं इन आत्मज्ञानी आचार्य संघ के दर्शन करने अवश्य जाऊँगा।

राजनीति एवं चाकरी की विवशता वश मंत्रियों को भी राजा के पार्श्ववर्ती बनकर जाना पड़ा। रास्ते में जाते समय ब्रह्मा मुखोद्भूत वेदों की महिमा गाते जा रहे थे। विद्यामद से गर्वित एवं छल-बल में अहंकारी शास्त्रार्थ कैसे कर सकते हैं। उनकी एक मात्र चाह अपने धर्म की पताका दशों दिशाओं में फेराने की ही थी, अतः बोले- महाराज ! श्रीमान धीमान से परित्यक्त जिनधर्म एवं नग्न मुनि को अपनाने से तो बेहतर है हस्ती पाद तल में प्राण दे देना।

श्रीधर्मा राजन ने वन में आकर देखा सचमुच वहां का वातावरण मन को हरने वाला था उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह उनके ही राज्य का हिस्सा हैं या वे स्वर्ग लोक में आ गये।

वन में शीतल सुगन्धित पवन चल रही थी उस ही प्रकार मुनिराजों की तप ध्यान की कीर्ति सुगंध फ़ैल रही थी। साता वेदनीय की, रत्नत्रय के यश, अतीन्द्रिय आनन्द की धूम मची हुई थी। जन जन को जंगल की हरियाली भा रही थी उस ही प्रकार मुनिराजों का अतीन्द्रिय आनन्द एवं देह से वैराग्य, मन को मोह रहा था। श्रावक जन सोच रहे थे "होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है।",

वन में मयूर नृत्य कर रहे थे, वैसे ही श्रावकों के मन मयूर नृत्य कर रहे थे।

पंछी कलरव कर रहे थे वैसे ही बच्चे मुनि दर्शन के लिए मचल रहे थे। शीतल क्षिप्रा नदी जगत की प्यास बुझा रही थी उस ही प्रकार आचार्य की देशना भव्य जीवों के आत्मानंद की तृषा को शांत कर रही थी। वानर समूह चंचल होकर वृक्षों की डाली पर उछल कूंद कर रहे थे वैसे ही चंचल नर नारी भिन्न टोले बनाकर नाना भजनों एवं शास्त्रों में अपने उपयोग को रमा रहे थे। गोरैया अपने बच्चों को फलों का मर्म दे रही थी उस

ही प्रकार जिनवाणी माता अपने उपासकों को ज्ञेय समुद्र में से निकल कर ज्ञायक के सर्वस्व की ओर इशारा-मर्म दे रही थी। मुनियों से शोभित गुफाएं, वनमें वृक्ष तले पाषाण खंड पर पर्वतके शिखर पर एवं नदियों के किनारे पर विराजें ध्यानस्थ मुनिराज इस पृथ्वी तल की शोभा बढा रहे थे। अहा वे ही तो इस भूतल के सर्व श्रेष्ठ अलंकार हैं। इस भूतल पर यदि चलते फिरते भावी सिद्धों का समूह न हो तो प्रकृति किसके लिए धान, फल, जल, धूप एवं हवा की व्यवस्था करेगी।

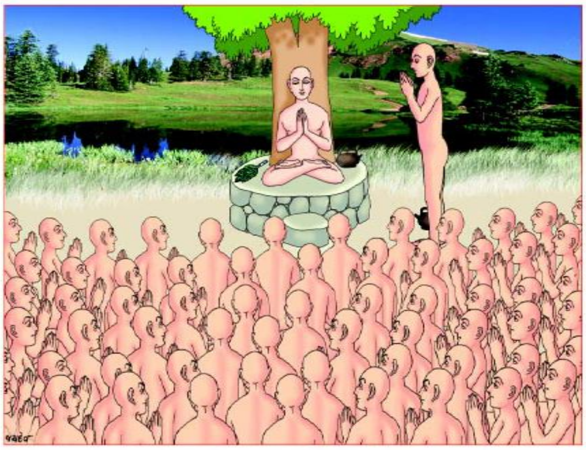

कहीं मुनिराज पाषाण मूर्तिवत ध्यान मुद्रा में रमें थे पक्षी कभी उन पर आ बैठते तो कभी हिरन अपनी खाज खुजाते दिख रहे थे।
संघ के चरणों में सादर अनर्घ उतारण करने के बाद राजा सहित सब मंत्रियों प्रजा ने नमन किया...
चर्चा तो छोड़ो किसी ने उन्हें आशीर्वाद तक न दिया...
यह देखकर मंत्रियों को धार्मिक विद्वेष फैलाने का अवसर मिल गया।
यह मुनि संघ आज तो मेरी ख्याति सुनकर ही मानो भीति चित्त मौन हो गये...यह मुर्ख शिरोमणि हैं; यह क्या बोलेंगें।...यह मेरे सामने तो क्या बोलेंगें इनके परम गुरु भी मेरे सामने पानी भरते नजर आयेंगें।
आचार्य श्री की आज्ञा से सभी मौन ध्यान मे मग्न ही रहे।

मंत्री श्रुतसागर संवाद

अंततः राजन श्रीधर्मा एवं चारों मंत्री वापिस राज महल को लौटने का निर्णय करके वापिस चल दिए रास्ते में एक मुनिराज श्रुतसागर आहार लेकर लोट रहे थे कि बाली मंत्रि ने कहा - एक सांड वह आ रहा है।

चारों मंत्री उनका अनादर करने का अवसर न गंवाना चाहते थे। राजन मुस्कुरा दिए। यह देखकर चारों मंत्री सामने आकर राह रोककर अनादर करने लगे।

नमुचि – रे पापी ! दूर हट।

राजन रोकने का प्रयास करते रहे... अरे किसी भी साधक से ऐसे वार्ता योग्य नहीं हैं।... श्रुतसागर जी एक पावन शिला पर तिष्ठ गये... राजन ने सम्मान में हस्त युगल जोड़ लिए। नमन गुरुवर प्रणाम !

नमुचि – राजन यह पापी है... नास्तिक है... सांच को आंच कैसी ?

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) धन्यवाद ! राजन ! इनका कहना सत्य ही है... पापों को पीने वाला होने से पापी हूँ, आपने मुझे स्मरण कराया इसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं। मैं नास्तिक हूँ क्योंकि मैं वेद को नहीं मानता हूँ परन्तु मैं आत्मा हूँ यह दर्शाने वाले वेद को मानने से मैं आस्तिक हूँ। वस्तु स्वरूप से वेद हैं न कि वेद से वस्तु स्वरूप।

बृहस्पति - (राजा से शिकायत भरे लहजे में) महाराज ये आर्य सनातन धर्म के विरोधी दुशमन हैं। ये लोग सूर्य नारायण देवता की उपासना तक नहीं करते हैं।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शांत शब्दों में) राजन ! हम तो सूर्य अस्त होते ही उनके विरह में जल तक ग्रहण नहीं करते। सूर्य नारायण के उदित होने पर ही हम प्रभाती गाकर जल ग्रहण करते हैं।

श्रीधर्मा – (भोचक्के देखते रह जाते हैं। ध्यान से सुनते हैं।) अच्छा !!!

बाली – हे राजन ! यह अर्द्धनारीश्वर को नहीं मानते हैं, अपने नगर के कुलदेवता को ही नहीं मानते हैं। कितना मनोग्य रूप लगता है शिव पार्वती का... जगत जनक एवं जननी एक साथ दर्शन पूजन को मिलते हैं।

श्रुतसागर मुनि – (उपशम मुद्रा किंचित भी कम न हुई) जो अर्द्धनारीश्वर को न पूजे वह तो आदमी कहलाने लायक तक नहीं... अर्द्ध न अरि जिनके ऐसे ईशवर अरहंत की पूजा अभ्यर्थना तो हम प्रतिपल करते हैं।

बृहस्पति – सम्भोग मुद्रा पूजो तो जाने ?

श्रुतसागर मुनि – ईश्वर अनंग हैं... वह तो आत्मा की शुद्धतम दशा है सम्यक भोग में निमग्न अरहंत सिद्ध को कौन नहीं पूजना चाहेगा। पर्याय ध्रुव स्वामी से अभेद अनुभवती है... इससे सुंदर सम्भोग विश्व में दूसरा नहीं होता है।

बाली – (तर्जनी दिखाते हुए) तू देवताओं के लौकिक रूप को नहीं पूजता ?

श्रुतसागर मुनि – (शांत स्वर में) अलौकिक स्वरूप शाश्वत होता है... हम राजा से बड़े उस राजा के देह की अमर शोभा स्वरूप आत्मा की पवित्र दशा को पूजते हैं।

प्रह्लाद – (शिकायती स्वर में) ये लोग ब्रह्मा बिष्णु महेश को नहीं मानते हैं, राजन !

श्रुतसागर मुनि – (जोर देकर) मानते हैं... आपसे इस सम्बन्ध में मन भेद नहीं हैं मतभेद हो सकता है।

बाली – कैसे ?

श्रुतसागर मुनि – आप जिन्हें आदि ब्रह्मा कहते हैं वे हमारे यहाँ आदिनाथ भगवान हैं जिन्होंने प्रजा को असि मसी कृषि वणिज शिल्प एवं काव्य संगीत का मार्ग प्रशस्त किया था। आप जिन्हें शिव कहते हैं वे आदिनाथ भगवान हैं आप उनका वाहन बैल-वृषभ को मानते हैं हम उनकी पहचान का चिन्ह वृषभ को मानते हैं।

बृहस्पति – (बात बदलते हुए) प्रत्येक आत्मा में भगवान का वास है... आप ?

श्रुतसागर मुनि – (स्मित आत्म विश्वस्त स्वर में) हाँ मानते हैं, प्रत्येक द्रव्य पदार्थ में प्रभुत्व का वास है वह अपनी स्वतंत्र सामर्थ्य से अपना कार्य करने से ब्रह्मा हैं। प्रत्यक द्रव्य नवीनता का सृष्टा है जीव अपने आनन्द का उत्पादक होने से विष्णु हैं और अपने दुःख का व्यय करता है इसलिए वही महेश है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा हैं, (आनन्दित आनन लिए) अरे वह स्वयं कारण परमात्मा है। प्रत्येक जीव परमात्मा बनने की समार्थ्य लिए बैठा है।

प्रह्लाद – (कुटिलता से देखते हुए) तू गणेश जी को मानता है? बोल... (अंदर में विशवास था मानो अब विजय उनकी ही है।)

श्रुतसागर मुनि – हाँ मानता हूँ। (हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए)

तुम गुणगणमणि गणपति गणत न पावहिं पार। श्रुत स्वल्पमति किम कहें, नमहूँ त्रियोग सम्हार॥

गण के ईश्वर गणेश केवलज्ञानी-सर्वज्ञ हैं... उनके लम्बोदर (ज्ञानगर्भ) में सारे विश्व का ज्ञान समाया हुआ है। उनसे बाहर इस विश्व में कुछ भी नहीं हैं।

प्रह्लाद – (खीजकर) सरस्वती... लक्ष्मी इन्हें मानो तो जानें ?

श्रुतसागर मुनि – अर्हन्त देव की वाणी सरस्वती कहलाती है उसके चार हाथ चार अनुयोग के सूचक हैं... वह हँसवाहिनी है अर्थात भेदविज्ञान करने वाला मनुष्य प्राणी ही इसमें अवगाहन कर सकता है। शवेत वस्त्र धारिणी अर्थात धवल परिणाम वाली धवल परिणामों में निमित्त होती हैं। लक्ष्मी का वाहन उल्लू हैं जो जड़ लक्ष्मी की सेवा करता है वह उल्लू है। जिसे उजाले में नहीं दिखता है। वास्तव में केवलज्ञान लक्ष्मी ही सच्ची लक्ष्मी हैं जिसके श्रवण मात्र से मोहान्धकार में भी स्पष्ट आत्मा को देख सकता है। मोह अन्धकार छटता जाता है। जड़ लक्ष्मी छोड़कर चली जाती हैं या जीव स्वयं उसे छोड़कर चला जाता है परन्तु केवल ज्ञान लक्ष्मी कभी जीव को छोड़कर नहीं जाती है और न जीव ही इसे छोड़ सकता है।

नमुचि – आप इनकी बातों में नहीं आइये राजन ! यह लोग स्याद्वाद के नाम पर छल ग्रहण करके आपको अपनी बातों में फंसा लेते हैं।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) स्याद्वाद शब्द जाल नहीं। समस्त समस्याओं का सुन्दरतम समाधान है। आप मात्र तीन अंजुली जल चढ़ाकर ही सूर्य उपासना मानते हैं। और हम तो जल तक ग्रहण नहीं करते हैं।

बृहस्पति – अरे ! इनको शर्म तक नहीं आती है। नग्न घूमकर हमारी माताओं-बहनों, बेटियों को लज्जित करते हैं। उनका बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) राजन ! शर्म योग्य तो पाप भाव एवं वासनाएं होती हैं। वासना विजयी यथाजात बालकवत निर्वस्त्र ही शोभते हैं।

नमुचि – निर्लज्ज कहीं के ! बातें तो खूब बना लेते हो।

श्रुतसागर मुनि – (आनंद पूर्वक) निर्लज्जता गुण है लज्जा दूषण। निष्पाप व्यक्ति निर्लज्ज ही होते हैं। लज्जा तो पाप के समय आती है; और आनी भी चाहिए। पहले मुझे भी लज्जा आती थी, परन्तु जबसे ब्रह्मचर्य एवं आक्ंिचन धर्म जीवन में आया है तब से विश्व में कोई स्त्री पुरुष का ही भेद नहीं रह गया है। सब ही जीव भगवान आत्मा दीखते हैं। इसमें बातें बनाने जैसी कोई बात भी नहीं है।

बृहस्पति – न तो ये नदियों का सन्मान करते हैं और न ही स्नान। ऐसे अशुचि लोगों को हमारे नगर में प्रवेश तक वर्जित होना चाहिए।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) राजन ! देह में ममत्व-मूर्च्छा हो तो स्नान करने का राग आता है। हम तो निरंतर स्वानुभव-अतीन्द्रिय आनंद के झरने में स्नान करते हैं। रही बात नदियों के सन्मान की तो हम उन्हें इतना पूज्य मानते हैं वे हमारी माँ समान हैं उसमें हम पैर कैसे रख सकते हैं। न ही उसमें अपनी मलिनता ही बहा सकते हैं। हम तो पानी का सदुपयोग मात्र करते हैं।

नमुचि – तुम पागल हो। बात करने लायक नहीं।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) सच है आपने ठीक ही पहचाना है। पापों को गलाने से पागल हूँ। और चाहता हूँ आप सब भी पागल हो जाओ। बातें करने में रख्खा ही क्या है। आप तो अपने परमात्मा के अनुगामी बन जाओ। यही एक शुभेच्छा है।

प्रह्लाद – तुम राजन को नहीं जानते। (धमकाते हुए) मुझे तो तुम्हें सजा देने में एक पल भी न लगे। यह तो राजन की करुणा-कृपा का फल है जो अब तक यहाँ खड़े दिख रहे हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) पुण्य की कृपा पर सदा प्रसन्न राजन को तुम नहीं पहचानते हो, आप भी अपने आप को नहीं पहचानते हो। आप सभी भगवान आत्मा हो वस भूले हुए भगवान हो। भूल मिटे भगवान बनने में क्या देर लगने बाली है।

नमुचि – मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता हूँ।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) मैं तुम्हें हराना भी नहीं चाहता हूँ। तुम्हारी जीत में ही मेरी जीत है। बस तुम अपने आप को पहचान लो। तुम जो दिख रहे हो वस इतना सा अस्तित्व नहीं है। तुम पूर्व भव में...

प्रह्लाद – (खिसिया कर) अरे पाखंडी ! तू अपना जादू हम पर नहीं चला सकता।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) पापों को खंड-खंड करे उसे पाखंडी कहते हैं। मुझे यह उपाधि सन्मान स्वीकार है।

नमुचि – तुम मान्त्रिक हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) हाँ! मधुर वचन ही हृदय विजय का महामन्त्र है। मन्त्र का विश्वासी होने से मैं मान्त्रिक हूँ।

प्रह्लाद – (घृणा से) तुम तांत्रिक हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) अवश्य ! सहज सुख के उपाय में दक्ष होने से महा तांत्रिक हूँ।

नमुचि – (झुंझलाते हुए) तुम बुद्धू हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) सत्य है ! मैं सबको भगवान समान देखने से बुद्ध हूँ।

प्रह्लाद – तुम अज्ञानी हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) मुझे आत्मा के सिवाय दुनियाँ के पाप एवं वासनाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं। अतः आपका कथन सत्य है।

बाली – तू भंगी है, हट जा हमारे मार्ग से।

श्रुतसागर मुनि – हाँ! मैं सप्तभंग का स्वामी होने से भंगी हूँ। मैं आपके (संसार) मार्ग में नहीं हूँ। मैं मुक्तिमार्ग में जा रहा हूँ। जिस मार्ग में कोई बाधा डालने में समर्थ नहीं और ना ही मैं किसी को बाधा डाल सकता हूँ।

प्रह्लाद – तुम दुनियाँ के, किसी काम के नहीं हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) सच पहचाना ! दुनियाँ में रहना नहीं आता है अतः शीघ्र ही इस लोक से मुझे मोक्ष जाना हि होगा।

बाली – तुम नालायक हो, फिर यहाँ क्यों रहते हो ?

श्रुतसागर मुनि – ताकि मैं आप सब को भी समझा सकूं कि आप सब भी इस दुनियाँ के लायक नहीं हो।

प्रह्लाद – (अवसर देखते ही उग्र स्वर में) राजन ! यह आपका घोर तिरस्कार है, हम बर्दास्त नहीं कर सकते हैं।

श्रुतसागर मुनि – संसार में रहना आप सब की मजबूरी है, भगवान बनना जरूरी है। आप उस पद के लायक है।

बाली – जानवर कहीं के...

श्रुतसागर मुनि – प्राण ही हैं उत्तम... अहो इस देह में आत्मा ही सर्वोत्तम हैं... इस विश्व में प्रत्येक प्राणी जानवर ही है। हमें उसके चैतन्य प्राणों का आदर करना चाहिए। मैं सदा चैतन्य एवं १० प्राणों का वरण एवं रक्षा करता हूँ अतः जानवर ही हूँ।

बाली – (खीज कर) आखिर, तुम चाहते क्या हो ?

श्रुतसागर मुनि – कषाय के लायक कोई न रहें। मात्र आपको आपका भान ही तो करना है; कि आप सर्व प्रकार से परिपूर्ण आत्म सत्ता हो। मोक्ष जाना, संसार सागर से छूटना, आपका भी जन्म सिद्ध अधिकार है।

प्रह्लाद – (घृणा से) तुम दुनियाँ पर भार हो।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) मैं प्राणियों को परिग्रह भार से मुक्त होने का उपाय ही बता सकता हूँ। परिग्रह में सारे पाप (लोभ, तृष्णा, हिंसा, क्रोध, झूठ, व्यसन, जुआ, वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन, शिकार, अहंकार आदि अनेकों पाप) बसते हैं, अतः उन्हें समस्त पापों से मुक्त होने का मार्ग बताना ही उनके प्रति निष्काम सेवा है।

बाली – (घृणा से) नंगे लुच्चे कहीं के...

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) द्रव्य भाव से निर्विकार होने से आगम में हमें नंगा कहा ही है और केश लोंच करने लुच्चा भी कहते हैं।

प्रह्लाद – ढीठ कहीं के, बेशर्म! तुझे बुरा तक नहीं लग रहा है; कि तुझे अनाप शनाप कहा जा रहा है।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) जब आप सही कहेगें तो क्रोध क्यों आएगा। आपने अभी तक मेरा अपमान किया ही कहाँ हैं। सत्य बात सुनकर तो आनंद ही होगा। यही तो स्याद्वाद का आनंद है। मैं शर्म = सुख सहित हूँ और ढीठ था जो आत्म हित में न लगकर भी भोगों में डूबा हुआ था। अब तो मैं दृढ़ हूँ, कठोर/क्रूर नहीं, ढीठ भी नहीं।

बाली – बेचारा ! कहीं का... हम तो दया कर रहे हैं...

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) आत्मा सुख का भंडार है; उसे पाने का अन्यत्र कोई चारा नहीं होने से- मैं 'आत्मा' बेचारा हूँ। चारे में सुख कहाँ... इन्द्रिय सुख के चक्कर में तिर्यंच गति में चारा ही मिलता आया है। अतः चारा का कारण भी नहीं तो कार्य भी नहीं। आहा ! मैं तो चार गति से मुक्त होने जा रहा हूँ।

बाली – नपुंसक कहीं के... कुछ कर-धर नहीं सकते हैं सो चल दिए धर्म करने... सन्तान बिना मुक्ति नहीं मिलेगी (उपहास में अट्टहास करता है) करते रहो कितनी ही तपस्या (हाहाहा)।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) सच है, मेरे में अब संसार वर्द्धक विकार उत्पन्न करने की सामर्थ्य न होने से शास्त्रों में हमें क्लीव ही तो कहा गया है। मोह क्षय करने का पौरुष सम्हालने वाले मोह की प्रजा कैसे उत्पन्न कर सकते हैं ! आप सब भी पवित्र भगवान आत्मा हो... आपके मुख कमल से स्यात्वचन सुनकर बड़ा प्रमोद हो रहा है।

नमुचि - हम तो क्रोध कर रहें हैं और यह हमें भगवान आत्मा कह रहा है... किस मिट्टी से बना है... यह इंसान है या देवता ? कहीं इसका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है ? हमारे ऋषि मुनि तो छोटी-२ बातों पर क्रुद्ध होकर अभिशाप दे देते हैं... बेचारी अहिल्या पत्थर की मूर्ति बनी रह गई... इसमें उसकी क्या गलती थी... उसके पति के भेष में इंद्र ने सम्भोग किया था... विष्णु एवं नारायण[1] तक श्राप से न बच सके... शिवजी तक तो परेशान हो गये अपने भक्तों से... तब तो उनका नाम भोले है...

---

[1] पर स्त्री अप्सरा उर्वशी से भोग न करने की सजा अर्जुन को मिली कि वह स्त्रियों के मध्य नपुंसक हो गया।
अभिमन्यु पुत्र परीक्षित ने ऋषि के गले में सर्प डालने पर रिशिपुत्र ने उन्हें (डालने वाले) श्राप दिया की सर्प से ७ दिन में मृत्यु हो गई।
कद्रू माँ ने अपने अपने पुत्रों को मायाचार न करने के फल में सर्प होकर यज्ञ में मरने का श्राप दिया।
युधिष्टर द्वारा अपनी माँ की गलती पता लगने पर समस्त स्त्री जाती को दिया श्राप आज तक भोग रहीं हैं... कि वह गुप्त पाप छिपा न सकेगी।
तुलसी का शील भंग करने एवं उसके पति को मार डालने के बदले में विष्णु भगवान को श्राप मिला वे पत्थर हो जाएं। जिस कारण उनकी शालिग्राम रूप में पूजा हो रही है।
रावण ने नंदी बेल की बन्दर जैसी शक्ल वाला कहकर हंसी उड़ाई तो श्राप मिला तू बंदरों के कारण ही मारा जाएगा।
एक सुंदर स्त्री दिखाई दी, जो भगवान विष्णु को पति रूप में पाने के लिए तपस्या कर रही थी। रावण ने उसके बाल पकड़े और अपने साथ चलने को कहा। अपनी देह त्याग दी और रावण को श्राप दिया कि एक स्त्री के कारण ही तेरी मृत्यु होगी।
रावण द्वारा सूर्पनखा के पति की युद्ध में म्रत्यु होने से भाई को श्राप दिया था मेरे कारण ही तेरी म्रत्यु होगी।
जब माया सती होने लगी तो रावण ने उसे अपने साथ चलने को कहा। तब माया ने कहा कि तुमने वासना युक्त होकर मेरा सतित्व भंग करने का प्रयास किया। इसलिए मेरे पति की मृत्यु हो गई, अत: तुम्हारी मृत्यु भी इसी कारण होगी।
रावण से एक युद्ध में राजा अनरण्य की मृत्यु हो गई। मरने से पहले उन्होंने रावण को श्राप दिया कि मेरे ही वंश में राम होगा जिससे मरोगे... .अर्थात मरण ५ श्रापों से हुई।
कर्ण ने कष्ट उठाकर भी गुरु की नींद में खलल न पड़ने दिया... गुरु को क्रोध आया तू क्षत्रिय होकर ब्राहमण बोलता है... मेरी सिखाई विद्याएँ तुझे जब सबसे अधिक आवश्यकता होगी तब ही याद न आएगी।
अपने पुत्रों का विनाश देखकर गांधारी ने श्रीकृष्ण को श्राप दिया कि जिस प्रकार पांडव और कौरव आपसी फूट के कारण नष्ट हुए हैं, उसी प्रकार तुम भी अपने बंधु-बांधवों का वध करोगे। आज से छत्तीसवें वर्ष तुम अपने बंधु-बांधवों व पुत्रों का नाश हो जाने पर एक साधारण कारण से अनाथ की तरह मारे जाओगे।
भीष्म पितामह को पूर्व भव में ऋषि की गाय हरण करने में सहभागी होने से अन्य को मनुष्य जन्म मिला परन्तु इन्हें स्त्री एवं राज सुख नहीं मिला।
वीर कृष्ण पुत्र साम्ब को स्त्री वेष में उनके पास ले गए और पूछा कि इस स्त्री के गर्भ से क्या उत्पन्न होगा। क्रोधित होकर ऋषियों ने श्राप दिया कि श्रीकृष्ण का ये पुत्र वृष्णि और अंधकवंशी पुरुषों का नाश करने के लिए लोहे का एक भयंकर मूसल उत्पन्न करेगा, जिसके द्वारा समस्त यादव कुल का नाश हो जाएगा।
प्रजापति दक्ष ने अपनी 27 पुत्रियों का विवाह चंद्रमा से करवाया था। उन सभी पत्नियों में रोहिणी नाम की पत्नी चंद्रमा को सबसे अधिक प्रिय थी। यह बात अन्य पत्नियों को अच्छी नहीं लगती थी। ये बात उन्होंने अपने पिता दक्ष को बताई तो वे बहुत क्रोधित हुए और चंद्रमा को सभी के प्रति समान भाव रखने को कहा, लेकिन चंद्रमा नहीं माने। तब क्रोधित होकर दक्ष ने चंद्रमा को क्षय रोग होने का श्राप दिया।
जब ययाति और देवयानी बगीचे में घूम रहे थे, तब उसे पता चला कि शर्मिष्ठा के पुत्रों के पिता भी राजा ययाति ही हैं, तो वह क्रोधित होकर अपने पिता शुक्राचार्य के पास चली गई और उन्हें पूरी बात बता दी। तब दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने ययाति को बूढ़े होने का श्राप दे दिया था।

श्रुतसागर मुनि – (मन ही मन सोचते हुए-इन्द्रिय ज्ञान से जिसे दुनियाँ क्रोध कहती है वह तो उत्पाद व्यय शील है और आत्मा तो सदा सुरक्षित ध्रुव तत्व है ..इन्हें कहाँ भान है इन सब बातों का... परन्तु योग्यता आने पर इनकी भी काललब्धि खिलेगी... अहो परमात्म तत्व... (गुनगुनाते हैं)... सहज सरल है शिवसुख का पाना ।... कोई भी जीव जगत में श्राप एवं वरदान के योग्य नहीं हैं... सब ही भगवान हैं तो सहज ही समता जागती है इसमें आश्चर्य क्या ?

नमुचि – (धमकी भरे स्वर में) मैं आज रात तुझे देख लूंगा।

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) मैंने तो तुम्हें अभी ही देख लिया।

प्रह्लाद – (खीज कर) क्या..या .. देख लिया। राजन के सामने मैं कुछ नहीं कह रहा वरना...

श्रुतसागर मुनि – (मधुर शब्दों में) आप इस क्रोध के भी अकर्ता हैं। आप शीघ्र ही भगवान बनने बाले हो। समस्त पापों से मुक्त होने की योग्यता धारी होने से आप सब भव्य हो।

नमुचि – (नीचे दिखाने का अवसर नहीं मिल पा रहा है ..लड़ने का हर अवसर चूक रहा हूँ...हार से खीज कर) राजन ! चलिए... अब यहाँ एक पल भी रुकना श्रेयस्कर नहीं होगा।

बाली- काल कहीं के ?

श्रुतसागर – (स्मित वदन)काल का काल हूँ आपने सही पहचाना। सचमुच कालातीत तत्व को जान्ने के बाद काल का भय किसे हो !

श्रवण कुमार के माता पिता का राजा दशरथ को श्राप। जैसे हम तरसे मरे वैसे ही अपने पुत्र वियोग में तड़फ कर प्राण दोगे।

नलकुबेर को पता चली तो उसने रावण को श्राप दिया कि आज के बाद रावण बिना किसी स्त्री की इच्छा के उसको स्पर्श करेगा तो उसका मस्तक सौ टुकड़ों में बंट जाएगा। श्राप दाता उशी का भतीजा था।

श्रीगणेश ने तुलसी से विवाह करने से इंकार कर दिया। क्रोधवश तुलसी ने श्रीगणेश को विवाह करने का श्राप दे दिया और श्रीगणेश ने तुलसी को वृक्ष बनने का।

नारद स्वयंवर में भगवान विष्णु के रूप में पहुंचे, लेकिन भगवान की माया से उनका मुंह वानर के समान दिखने लगा। विष्णु को युवती ने वरण कर लिया। नारद ने भगवान विष्णु को श्राप दिया कि जिस प्रकार तुमने मुझे स्त्री के लिए व्याकुल किया है। तुम भी स्त्री विरह का दुःख भोगो। राम ने सीता के अपहरण एवं परित्याग का दुःख भोगा।

नमुचि – क्रूर कहीं के...

श्रुतसागर – (स्मित वदन)सच है, आप भाव सत्य कह रहे हो। मैं मोह के लिए क्रूर ही नहीं अत्यंत क्रूर हूँ... विकार को जन्म नहीं लेने देना चाहता हूँ... अतः कषायों-क्रोध आदि के लिए क्रोध हूँ।

प्रह्लाद – (घृणा से नाक सिकोड़ते हुए) काले कलूटे गंदे... देखने में कैसे असभ्य लगते हो ?

श्रुतसागर – (स्मित वदन)सच है, आप रूप सत्य कह रहे हो। परन्तु मैं तो रूपातीत हूँ अतः सुनकर आनन्द हुआ।

बाली- आप असूया हो... अदेखसके के भाव से ग्रसित हो... दुसरे धर्मों के उद्भव को देख नहीं सकते हो।

श्रुतसागर – (स्मित वदन)मैं तो एक साथ अनंत धर्मों को देखने में समर्थ हूँ। आप मुझे देख सके होते तो आपको भी आनन्द आता। वस्तु स्वभाव को जानते ही आपको भी आनन्द होगा।

नमुचि – हम भगवान नहीं हैं और आप झूठ बोलकर पाप कर रहे हैं।

श्रुतसागर – (स्मित वदन)भावी भगवान को वर्तमान में भगवान कहना भाषा परम्परा है। जैसे राजकुमार को राजा साहब कहना।सेठ के पुत्र को सेठजी कहना।

बाली – तू पाषाण है... तेरे ऊपर किसी की बात का कुछ भी असर नहीं होता।

श्रुतसागर – (स्मित वदन) सच है... यह आपने उपमा सत्य बोला है। उपसर्ग परिषहों से सदा अप्रभावी हूँ।

श्री धर्मा – (हाथ जोड़कर) यह पैशून्य वृत्ति वाले लोग हैं। स्वामिन इन्हें क्षमा करें।

श्रुतसागर – वे तो पीठ पीछे बुराई करते हैं ये तो बाल स्वभाव सम हैं, जो इन्हें भास रहा है वैसा ही सहज ही कह रहें हैं। यह तो सरल हृदयी हैं। इनका प्रत्येक वचन मुझे आनन्द दे रहा है अतः पैशून्य (दुखदायक) वृत्ति कहीं से भी सिद्ध नहीं हो रही हैं।

नमुचि – तू नीच गति में जाय - हाय लग जाय। मूर्ख कहीं के !

श्रुतसागर – नीच गति में अनंत वार गया हूँ परन्तु जैसे गटर को देखने पर भी आँख पवित्र ही रहती है। गटर में गिरने पर भी हीरा कीमत नहीं खोता है। उस ही प्रकार मैं पवित्र आत्मा हूँ। पवित्र साधना को हाय लगने की व्यवस्था भी नहीं हैं।

श्रीधर्मा – (मंत्रियों से) यह पवित्र साधू हैं... तुम क्या बोल रहे हो ? कुछ होश है या सारी मर्यादाएं तोड़ दोगे।

श्रुतसागर – नही राजन ! यह सम्भावना सत्य कह कर मुझे चेता रहें हैं। यदि मैं आपा खो दूँ तो इनका कहना अवश्य ही सत्य सिद्ध हो जाएगा।

श्रीधर्मा – धन्य है आपका धैर्य। महाराज ! यह तो आपकी झूठी बदनामी कर रहे हैं... मैं तो आपको भी समझता हूँ और इनके स्वभाव को भी जानता हूँ।

श्रुतसागर – आपका कहना सत्य भी है और असत्य भी।

श्रीधर्मा – (आश्चर्य से) परन्तु... एक साथ दो धर्म कैसे हो सकते हैं ?

श्रुतसागर – हो सकते हैं, राजन ! उभय सत्य का प्रकार है यह। इन्द्रिय ज्ञान से कर्मोदय की अपेक्षा से सुनने पर यह बदनाम करते हुए भासते हैं और वस्तु स्वरूप से देखें तो यह वाणी के अकर्ता है। फिर बदनाम कैसे कर सकते हैं। यह भी हम सबके समान पवित्र ज्ञाता-आत्मा ही है। यही परम सत्य है।

इन्होने दोष कहने वाला झूठ नहीं बोला क्योंकि असत्य का लोक में स्थान ही नहीं हैं। द्रव्य गुण पर्याय सिवाय लोक में हैं ही क्या ? सत का ज्ञान ही तो सत्य है। सत होने पर भी न माने यह असत्य मात्र कल्पना में ही है।

बोलने वाला वस्तु स्वभाव के विरुद्ध नहीं बोल सकता है।

सभी - (चारों मंत्री एवं राजन आश्चर्य चकित हुए) ऐसे कैसे?... आप स्वयं अब तो असत्य कह रहें हैं।

श्रुतसागर – ऐसे वचन (गाली) मिलना पुण्योदय से होता है।

बाली – ऐसा पुण्योदय तो आपको हम सदा के लिए ला सकते हैं।(अहंकार से मुस्कुराए) आज रात्री कुछ ज्यादा ही पुण्योदय आने वाला है... आप तो खुश ही होंगें... देखूंगा (मन ही मन बडबडाये) कमीना कहीं के।

श्रुतसागर – (स्मित हो) ओहो आपने मुझे पहचाना... मेरे में कमी ना... मुझे सांड कहना भी सत्य ही था...

श्री धर्मा – ऐसे कैसे ?

श्रुतसागर – यह एक संवृत सत्य है, विवक्षा से सत्य ही है। यह शब्द वर्तमान उदय का ज्ञान करा रहा है, भूतनैगम नय या भावीनैगम नय से आप ही सही कह रहे हो। 'पशु'शब्द भूतकाल की विराधना एवं भविष्य के लिए सावधान कर रहा है। सविपाक निर्जरा तो इस ही प्रकार से होती है। हमारी समता का परीक्षण होता है। हमारे उदय के बिना कोई बोल भी कैसे सकता है ? (स्वरूप में खो गये) अतः उसे तो अकर्ता ही देखो, तो समता का ही जन्म होगा।(स्मित हो) बोलने वाला अकर्ता ज्ञायक निर्दोष जीव ही है। गाली देने से उसे भी बंध नहीं होता है...बंध तो उस समय उस जीव की मिथ्यात्व, अविरति आदि भावों से होता है। बोलने वाले शब्द भाषा वर्गना की पर्याय हैं... उन्हें भी बंध नहीं होता है। सुनने वाले को भी सुनने से बंध नहीं होता है अतः गाली या दोषारोपण अकिंचित्कर ही तो सिद्ध हुए। [2]

श्रीधर्मा – (करबद्ध विनायवत हो) धन्य हैं मुनि शिरोमणि। आपके गुरु तो अवश्य ही परम संयमी - अकम्प होंगें। जब शिष्य इतना गुणवान, विनयवान, गंभीर हो तो इनके गुरुदेव का तो क्या कहना !

नमुचि – नहीं राजन ! मैं इनके ढोंग को सारी जनता के सामने प्रगट करने तक का समय चाहता हूँ। मैं इनके छल से उज्जयनी की रक्षा करना चाहता हूँ। शीघ्र ही दूध का दूध पानी का पानी हो जाएगा।

---

[2] दुखी होने वाला पैशून्य एवं गर्हित बचन समझ कर कहेगा एवं सुनेगा परन्तु यह तो एक प्रकार का सत्य भी हो सकता है | संवृत्त सत्य फिर अच्छे अभिप्राय से कहे गये शब्द पुण्य भाव रूप समिति कहलाती हैं और अच्छे से सुने गये शब्द पुण्य बंध का कारण हैं |

श्रीधर्मा – (हंसकर) अच्छा ! प्रणाम गुरुवर । आपके दर्शन से कृतार्थ हुआ । इनका कौतुहल आपसे ज्ञानियों को क्षम्य ही होता है । ये आपके दया सागर की बूंदों के पात्र अवश्य हैं । प्रणाम ।

प्रह्लाद – अरे! हम तो पापी हैं पापी... देखना आज रात क्या करेंगें ।(चारों मंत्री मन में सोचते रह गये)

आचार्यश्री के श्रीचरणों में आहारचर्या का प्रतिक्रमण करते हुए मंत्रियों से हुए संवाद विजय की जानकारी भी आनन्द भाव से दी ।

परन्तु गुरु वदन शांत, विरक्त, उदास, गंभीर देखकर...सहम गये श्रुत सागर जी...उन्हें अपनी गलती का भान हो रहा था... ओह ! राह चलते मुझे उनसे चर्चा नहीं करना चाहिए थी...सच है, धर्म द्वेषी यदि अपमानित हो तो भुजंग से भी ज्यादा भयंकर हो जाता है...अब मुझे क्या करना चाहिए ?... .नहीं सर्व श्री संघ पर कोई संकट नहीं आना चाहिए...प्रभो ! प्रायश्चित ही एक मात्र शरण है...आपसे विनय है प्रभो ! मुझे क्षमा नहीं दंड दीजिये...मुझे प्रायश्चित विधि से शुद्ध कीजिये... मैं उस ही राज बीथी की ओर जाने वाली बीथी स्थित वृक्ष तले कायोत्सर्ग धारण करने की अनुमति चाहता हूँ...

योग्य विकल्प पर आचार्य श्री के वदन पर प्राप्त प्रतिक्रया शांत स्मित संतोष को प्रदर्शित कर रही थी । अनुमोदना/ सहमती जानकर दिवस के योग्य कृति कर्म करके सायं विवादित स्थान पर चले गये । उन्हें जाते हुए आचार्य अकम्पन स्मित वदन देखते रहे ।

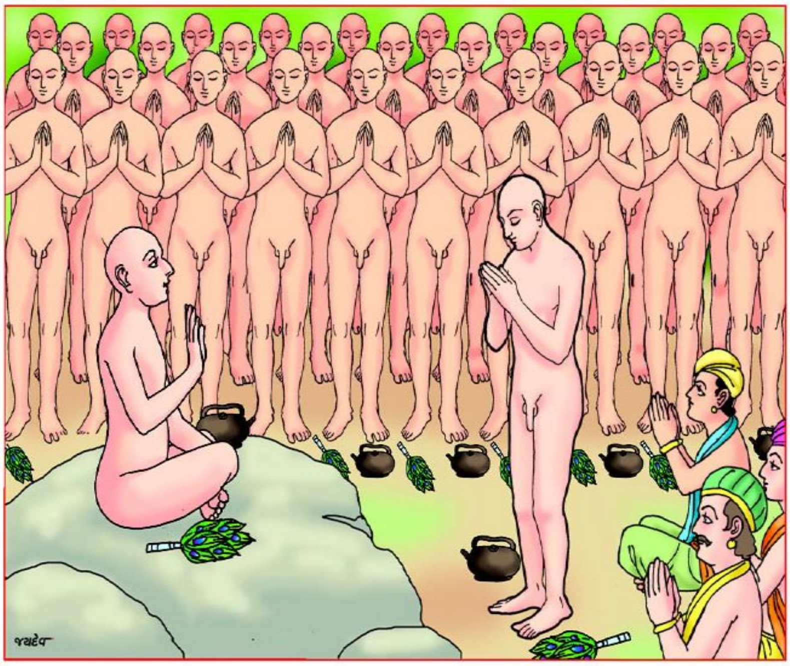

सचमुच ही श्रुत का सागर है मेरा शिष्य... कितना समझदार है...चरम शरीरी है... जिन शासन प्रभावना ऐसे ही शिष्यों से होती है...

कहीं कुछ हो गया तो ? एक प्रश्न उठा मन में।

नियत व्यवस्था में प्रश्न व्यर्थ गया।

उसकी रक्षा संघ में छुपाकर की जा सकती थी ?

उसकी या संघ की ? मुस्कुरा दिए।

प्रश्नों की लहरे आ रहीं थीं और नष्ट हो रही थी...

शिष्य की रक्षा करना आचार्य-गुरु का कर्तव्य है...हाँ परन्तु ..कर्तृत्व नहीं...देह शिष्य हैं भी कब... उसकी आत्मा तो सदा श्रद्धा ज्ञान चारित्र से सुरक्षित हैं। स्मित हो आया।

कल देखो क्या होता है ?

परिणमन के सिवाय क्या होगा... सारी पर्याये नियमित व्यवस्थित ही तो होगी।

इधर श्रुत सागर राह में चलते हुए उनके उपयोग की स्वच्छता में आनंदकारी तरंगे उन्हें आनन्दित कर रहीं थीं। आइये हम भी उसमें अवगाहन करें।

श्रुतसागर – (स्वतः) चरम शरीरी मुनिराज को कैसा भय... अहा ! असाता के उदय से ज्यादा पीड़ा के निमित्त नहीं बन सकते हैं...और साता का उदय होने पर जिनशासन की प्रभावना हो जायेगी...सारे योग निश्चित ही हैं ।...मेरे से विवाद कहो संवाद... हो ही तो गया...और अब मेरी चूक से यदि भारत वर्ष में जिनशासन पर कोई आंच आये...तपस्वियों... मोक्षमार्गियों पर कोई विघ्न बाधा आये यह तो असह्य-अक्षम्य ही है...अतः मुझे स्वयं ही जीवन जावे तो जावे परन्तु अप्रभावना का निमित्त नहीं बनना चाहिए...

यूँ तो किसी में एक परमाणु बदलने या एक भी पर्याय में फेरफार करने की सामर्थ्य नहीं है... चतुर्थ काल वर्त रहा है... मोक्षगामियों की धारा चतुर्थ काल के अंत तक निराबाध चलनी ही हैं...चलो सविपाक निर्जरा का सुंदर अवसर आया है...ज्ञाता तो ज्ञाता ही रहेगा

...आयु निषेक क्षय से पूर्व कौन देह से दूर कर सकता है !... देह रहे, चाहे अभी जाए, सहज जीवन हमारा है... योग्यता से ज्यादा पुरुषार्थ कैसे हों !... भवितव्य को कौन बदले !... और क्यूँ बदले...बदलती पर्याय को कौन रोके...समय से पहले समय से पूर्व कोई काम आज तक हुआ नहीं हैं... ... अहो सतत आनन्द दायिनी

जिनवाणी मेरे हृदय में सदा प्रकाश कर रही है... फिर मुझे क्या चिंता...आनन्द सरोवर में सतत आनन्द भोगों रे...मुक्ति की भी क्या अभिलाषा !... मुक्त ध्रुव स्वभाव के वेदन में कमी नहीं कुछ दिखलावे।

अच्छा ! रहे तो साथ ही मुनि संघ में आराधना करेंगें... अन्यथा सिद्धालय में तो अवश्य मिलेंगें। कायोत्सर्ग में विराज गये...

चारों मंत्रियों की विक्षिप्त दशा

इधर मंत्री प्रासाद में राजा के सामने अपमानित मंत्री का मन न भोजन में लगा न पत्नी में। वे बिना ईंधन के ही जल रहे थे। मानसिक वेदना का पार नहीं था। कृष्ण लेश्या में राज-मर्यादा, नीति, न्याय, भोग, अपयश, भूत भविष्य, कर्म बंध, कर्म उदय कुछ भी तो नहीं सूझता है सो ना ही सूझा।

बाली के महल में रात्री में सुंदर कामिनी-पत्नी शृंगारित होकर आई वह गीत गाकर अपने स्वामी को प्रसन्न करने का उद्यम करने लगी तो...

बाली चीखा - वसुन्धरी ! चुप करो।

वसुन्धरी – (विनीत स्वर में) हे स्वामी ! आज आपको क्या हुआ है। मेरे से कोई अपराध हुआ हो तो कृपया मुझे इंगित करें या दंड दें, मैं अपने में सुधार अवश्य करूंगी। मुझे अपने स्वामी का वदन म्लान देखने का संस्कार नहीं है।

बाली – तुम अभी जाओ...(पुनः चीखा)...आजकी रात मेरे से बात करने का परिणाम अच्छा नहीं होगा। फिर न कहना... कि मैंने तुम्हें चेताया नहीं।

वसुन्धरी - स्वामी ! इतना उत्तेजित तो मैंने क्रूर सिंह से घायल होने पर भी नहीं देखा था... आपने तो अनेकों शत्रुओं को पराजित किया है...आज जरुर कोई बड़ी बात हुई है... मैं आपके साथ सदा रहीं हूँ... मुझे बताओ मैं आपकी प्रसन्नता के लिए क्या कर सकती हूँ ?

बाली – (अपमान से फटा जा रहा था) आज मेरा अपमान एक नंगे आदमी ने कर दिया...मैं जी नहीं सकता हूँ। मैं उसे मारूंगा... या मर जाउंगा...और कोई चारा मेरे पास नहीं हैं...ओफ ओ ! कक्ष में हाथ पर हाथ मारकर झुंझलाता हुआ चक्कर लगाता है। तुम सो जाओ प्रिये ! आज में सम्भोग[3] सुख से बंचित रहूंगा।

वसुन्धरी - सच है एक आकुलता अलौकिक सुख की तो बात ही क्या समस्त लौकिक सुख से भी बंचित कर देती है; आज आपने ढंग से न कुछ खाया न ही मन पसंद रसाहार ही लिया। एक दाना भी मेवा का

---

[3] सम्यक भोग – गृहस्थ उपार्जित सामग्री एवं सिद्ध भगवान उपार्जित शुद्धता का सम्भोग करते हैं।

नहीं लिया... मेरे सुंदर रूप को एक क्षण भी नहीं निहारा... मेरे गीत पर ध्यान तक नहीं गया आपका। प्यार से गले में बाहूपाश डालते हुए... (वसुंधरा ने अपनत्व दर्शाने का प्रयास किया।)

परन्तु बहुपाश से मुक्त होते हुए...हाथ पकड़ कर झिंझोड़ कर ऐसा धक्का दिया कि वह सीधे लहरा कर दीवार से जा टकराई... धक्का वर्दाश्त न हो सका सर दीवार से जा लगा और फट गया सिर से खून की धार उफन पड़ी... फिर भी बाली की नाराजगी कम न हो सकी...

बाली – जा मर... कहा न एक वार... आज मेरे से दूर रह... अपने आपको समझती क्या है... रम्भा ! बड़ी आई मुझे आनन्द देने वाली।...पाँव पटकते हुए कक्ष से बाहर चला गया...वसुन्धरी की चीख पुकार सुनकर सन्तान एवं दास दासियाँ, आईं और सम्हालने की चेष्ठाएं करने लगी। आवश्यक उपचार करने लगी... बच्चें वहीँ बिलखने लगे।

बृहस्पति अपने भवन में महा कुपित हो रहा था... माता पिता उसे वात्सल्य से समझाने का प्रयास कर रहे थे

पिताश्री - बेटे ! मान जाओ... यह सब अपने परिवार के सम्मान, आजीबिका के लिए ठीक नहीं कर रहे हो... पहले तो तुम्हें अपने काम से काम रखना था...

माता - राजा चाहे जिसे नमस्कार करे... तुम्हें क्या...अपन अपनी मान्यता के लिए स्वतंत्र हैं... वह तुमसे बलात जैन धर्म मानने को तो नहीं कह रहा था।

बृहस्पति - मैं इन नंगों का प्रभाव ख़त्म करना चाहता हूँ... (चीखा)

पिताश्री - अरे वे तो स्वतः ही विहार कर जायेंगें...

बृहस्पति – (क्रोध में चीखा) मैं उनका शाश्वत बिहार कराना चाहता हूँ...

पिताश्री - कांपते हुए...नहीं बेटा !...तुम ऐसा कभी नहीं कर सकते... और न ही करना चाहिये।

बृहस्पति – (अहंकार में)देखता हूँ मुझे कौन रोकता है ?

माताश्री - बेटे ! पाप से डरो...जो गलत होगा... वह अपने आप सजा भुगतेगा।

बृहस्पति - आप कायरों की तरह राजा की सेवा करते रहे... तब ही तो अन्य वादी उज्जैन में जड़ जमाते रहे... (घृणा से बोल पड़ा)... मैं जा रहा हूँ... आप कल सुबह देखना... बाप ने रोकने के लिए उसका हाथ पकड़ने का प्रयास किया... माँ रुदन करने लगी दरवाजे पर अड़ गई... पत्नी बच्चे असमंजस में किम कर्तव्य विमूढ़ हो रहे थे...

पत्नी ने आग्रह किया - मान जाओ...पत्नी को ठोकर मार दी... बच्चों को धक्का दे दिया... हट जाओ मेरे राह से... माँ को पीट दिया...पिता के सिर पर तलवार की मूठी का वार कर कर दिया वे घायल होकर गिर पड़े... चारों ओर रुदन का स्वर...

पत्नी - नाथ !... बड़ों के अनादर से चिर संचित पूण्य भी साथ छोड़ देता है...आज तक आपने बड़ों की आज्ञा का आदर किया है...

सब ही बिलखते रह गये।

०००००००००००

इधर नमुचि के प्रासाद में पत्नी के द्वारा बहुत मनाने पर जैसे तैसे अनमने मन से भोजन को तैयार हुआ तो गरमा गर्म पूरी की भाप से उसकी उंगलियाँ जल गई...गर्म खीर का कटोरा लेकर सीधे ही पीने का प्रयास किया तो जिव्हा जल गई... नोकर को स्मित देखा तो गुस्से में खीर उसके चेहरे पर दे मारी... थाली कटोरियाँ उठा-२ कर उस पर वरसा दी।

नमुचि - हसता है मेरे ऊपर... नालायक...स्वामी द्रोही कहीं का... किंकर की तरह रहो...(क्रोध में अनाप-शनाप बके जा रहा था)... नोकर का चेहरा खीर से जल गया वहा फफोले पड़ गये थे... उसकी आँख की पुतलियों पर भी खून छा गया था... वह तड़फ रहा था...अन्य किंकर किम कर्तव्य विमूढ़ खड़े थे...नमुचि पाँव पटकता हुआ चला गया... तब सभी की जान में जान आई... उस पर पानी डालकर उसे बचाने की कौशिश की। घाव पर पट्टी बाँधी...शीतल घी हल्दी का लेप लगाया।

००००००००००००

इधर प्रह्लाद के प्रासाद में बच्चे क्रीड़ा कर रहे थे...वह चीखा... शांत रहो...जब देखो क्रीड़ा-जब देखो क्रीड़ा कोई और काम सीखा है तुम लोगों ने...छोटी बच्ची कृष्णा इठलाती हुई उसके करीब आई... बापू ! आप भी अमाले साथ तेलो न... देतो... भैया ने रथ बनाया है... आप भी उसकी बलात में तलोगे न ?...

प्रह्लाद - दूर हट... बली आई...बलात में चलोगे न... हरी एवं किशन भी बापू को बरात में चलने को मनाने आ गए... आप भी चलोगे... माँ भी चलेगी... वे ताली बजाबजा कर उछलने लगे...गुस्सा सातवे आसमान पर आ गया...वह चीखा - शांत रहो...

बच्चे समझ ही नहीं पा रहे थे... बापू आज क्यूँ चीख रहे हैं...

प्रह्लाद - पढने बैठ जाओ...

हरी - क्या ?...

प्रह्लाद - धर्म...

हरी - वह तो हम पढ़ चुके हैं...

प्रह्लाद - तो कर्म...

हरी - वह हम प्रातः ही कर चुके...

प्रह्लाद - तो गणित... व्याकरण...रसायन...

मोहन - उसके तो शिक्षक पढ़ाकर भी जा चुके हैं...

प्रह्लाद - तो आगे का पढों...

हरी - उसकी किताब नहीं हैं...

प्रह्लाद - तो पीछे का पढ़ो...

मोहन - वह तो सब याद है...पूछलो...

प्रह्लाद - ओफ्फो... क्या आफत है...

सभी बच्चे निरपराध भाव से हसने लगे... उसे खीज आ गई... उसने बच्चो को धुन डाला।

बच्चे बिलखने लगे... हरी जमीन पर लौट-२ कर बुक्के फाड़ कर रोने लगा... मोहन भागकर अपने को बचाने चला गया परन्तु कृष्णा माँ को पुकारने लगी... बापू ने अमे माला... (वह वहते आंसू दोनों हाथों की नन्ही हथेलियों से पोंछ रही थी... वह माँ की ओर बचाने की मुद्रा में बाह फैलाकर रो रही थी)... बापू खलाब हैं...

प्रह्लाद - खलाब है... ले मर .. (तब ही गुस्से में एक लात उसे और दे मारी... बच्ची दूर तक घिसट गई... उसे अनेकों खरोंच आजाने से वह बिलखने लगी)

प्रह्लाद का यह कृत्य उसके व्यक्तित्व एवं यश के एक दम विरुद्ध था।

पत्नी की डांट सुनते हुए पाँव पटकते हुए कक्ष से बाहर निकल गया।

दिन भर पत्नी बच्चों से आँखें नहीं मिला पा रहा था प्रह्लाद। आनन्द के श्रोत बच्चे आज दुःख के अंगारों से भास रहे थे।

रात्री के २ प्रहर बीत चले थे... निद्रा चारों मंत्रियों के नेत्रों से दूर न जाने कहाँ पलायन कर गई थी। चारों एक मत होने का प्रयास कर रहें थें।

बाली – करें तो क्या करें ?

नमुचि - राजन एवं प्रजा ने इस हत्या का जिम्मेदार यदि अपने को माना तो बचाव कैसे करेंगें ?

बृहस्पति - आज ही तो मुनि से विवाद में हारे हैं और आज ही उनकी हत्या कर देंगें तो बात तो बिगड़ेगी ही।

बाली – आज नहीं तो कभी नहीं... समझे।... अपमानित होकर जीने से भली है मृत्यु। राजा फांसी देगा तो हम कहेगें... शास्त्रानुसार राज्य चलना चाहिए पहले हमें शास्त्रार्थ में पराजित करो।

बृहस्पति - हम शान एवं धर्म भक्ति की मौत मरना चाहते हैं। हम मर कर भी अमर हो जायेंगें...मृत्यु तो एक दिन सब ही को आनी है।

चारों की एक सी दशा थी, चारों की आज परिजनों से नहीं बनी थी किसी ने क्रोध में अपने पत्नी, बच्चों को धुन डाला था किसी ने नोकर पर गर्म भोजन से भरी थाली दे मारी थी और किसी ने तो अपने माता-पिता पर ही हाथ उठा डाला था। हाय मन में बुरा लग रहा है... आज हम सब यह कैसा व्यवहार कर रहें हैं ? परन्तु समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

अब तो मारने मरने पर ही चैन मिलेगा। चलो... चलते हैं जंगल में उन सब नंगों को ठिकाने लगा देते हैं। बृहस्पति विक्षिप्त स्वर में बोला।

चारों तलवार लेकर चले...चारों को आज प्रातः से ही अपशगुन हो रहे थे... परन्तु तीव्र कषाय में अंध व्यक्ति को कुछ भी हिताहित नहीं दिखता है। रास्ते में ठोकर खाकर गिर गया बाली के घुटने छिल गये... कुछ दूर पर नमुचि अन्धकार में नीची डाली से टकरा गया आँख के ऊपर व्रण हो गया रक्त की धार निकल पड़ी...हृदय तो सभी के कांप ही रहे थे... बृहस्पति के दिल में दर्द उठ आया था फिर भी दवाकर चला जा रहा था। प्रह्लाद के जूते में एक बड़ा काँटा घुस गया था जो पैर को पार कर गया चलना असह्य होने पर भी वह क्रोध में चला जा रहा था। सच है विपरीत बुद्धि में अन्य द्वारा दंड दिए जाने की आवश्यकता ही नहीं पडती हैं। क्रोधान्ध बुद्धि स्वयं ही स्व घाती होती है और पर घात में निमित्त हो सकती है।

आज जैसा अपमान, भोगों से बंचित रहना, स्वयं के परिकर परिवार से रिश्ते बिगड़ना आज से पहले कभी नहीं देखा गया था। हर संकट में सारे परिजन साथ रहे परन्तु आज तो स्वयं की मति ही स्वयं का साथ नहीं दे रही थी।

जिस तिस प्रकार एक दुसरे को सहारा देते हुए जंगल में पहुंचे और रास्ते में ही उन्हें एक काली छाया दिख गई... पहले तो दूर से देखकर डर गये... स्थिर मुद्रा देखकर हिम्मत आई, निकट आकर देखा तो रात्री के प्रकाश में भी वे स्पष्ट देख पा रहे थे की वहीँ नंगा साधू ध्यानस्थ है...एक वार तो आश्चर्य हुआ कि इतनी ठण्ड में भी इतनी रात्री तीसरा प्रहर बीतने को है और यह स्थिर आसन से खडा होकर ध्यान कर रहा है। इसे मरने का भय नहीं है... न ठंड का डर कैसा... सुंदर जवान शरीर... और कितना शांत मन...धन्य है इस कामदेव को जो साक्षात् जिनदेव सा दिख रहा है। मन कुछ शांत हुआ... .

स्वरूप सरोवर में आकंठ मग्न... श्रुतसागर जी

तब ही बाली हर्ष से चिल्लाया - अच्छा हुआ यह नंगा दुष्ट यहीं मिल गया...यह खुद मरने को आ गया... हा हा हा...हा हा हा... चारों हसने लगे। आज के बाद किसी नंगे साधू की हिम्मत उज्जैनी आने की नहीं पड़ेगी... कल ही तेरे सारे साथी डर के मारे भाग खड़े होंगें।

तब ही मंत्रियों के स्वर सुनाई दिए...अट्टहास सुनाई दिया...अंदर से आवाज आई... पधारो भावी सिद्धों... आपकी काललब्धि, भली होनहार आ गई है... श्रुतसागर जी सोच रहे थे।

अब बच... तू... तूने हमारा अपमान करके ठीक नहीं किया...बोल तू किसके हाथ से मरना पसंद करेगा ? मरना तो पड़ेगा ही...इस समय राजा भी नहीं और न ही तेरे गुरु... हा हा हा हा... कौन बचाएगा ?... आओ आप बड़े हो बाली !...आप ही सबसे पहले वध करने के अधिकारी हो।

नहीं ! इसमें छोटा बड़ा क्या ? मारो साले को...लो सब एक साथ मारते हैं १...२...३. हाथ एक साथ उठे और ऊपर के ऊपर आकाश में ही टंगे रह गये... अरे यह क्या हुआ ? हाथ हिल ही नहीं रहें हैं। तलवार हिल तक नहीं रही थी।

श्रुतसागर – (स्वतः) अरे ! वार तो किया ही नहीं...कुछ हुआ क्या... लगता है कीलित हो गये...अरे ! वृथा ही सुबह तक कष्ट पायेंगें... चलो अनंत कष्ट के सामने यह कष्ट कोई ख़ास नहीं है...

चारों चीखने लगे तो वाणी भी अवरुद्ध हो गई। जिव्हा बाहर निकली ही रह गई। लात मारने को हुए तो पाँव भी उठे रह गये... दुसरे हाथ से उपायांतर करना चाहा तो वह भी हवा में मुड़े रह गये। ओह ! यह जादूगर है या किसी देव का प्रकोप...यह तो हिला भी नहीं और... कैसा अप्रभावी शांत साधना में मग्न...यह इसका काम तो नहीं दिख रहा है।

श्रुतसागर – (स्वतः) कर्मोदय में वृथा ही अपयश के शिकार होकर आधि-मानसिक कष्ट के शिकार होंगें... परन्तु इसमें मैं कुछ कर भी तो नहीं सकता हूँ...

"स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ फल निश्चय ही वे देते।

करे आप फल देय अन्य तो स्वयं किये निष्फल होते॥"

चलो आत्म हित में सावधान होने का एक अवसर तो मिलेगा ही...चाहे तो लाभान्वित हो जाए...करुना से एक बिचार और आया।

बाली – हे ब्रह्मा विष्णु महेश ! क्या आपको कुछ दिख नहीं रहा है ? आप कहाँ हो हमें बचाने का काम आपका है। आप तो भक्त वत्सल है... फिर आप की करुना कहाँ पलायन कर गई। ३३ करोड़ देवी देवताओं ! शीघ्र आओ .. हम तो आपके धर्म/नाम का ही प्रभाव करना चाहते थे... हमारे मन में स्वयं की ख्याति-लाभ-पूजा की चाह तो थी नहीं... सच्चे मन से पुकारने बाले की पुकार तो आप सुनते ही हो... यदि हम मारे गये तो जैन धर्म का प्रभाव हो जाएगा...वेदों का अपयश होगा... आपका भी तो सम्मान प्रजा में घटेगा।

चारों के मस्तिष्क में नाना विचार कोंध रहे थे...तब ही विचार आया वे धर्म का प्रभाव भी करने कहाँ चले थे तब तो उनके दिमाग में मात्र बदले की भावना ही थी... भगवान को स्मरण वन्दन करके चलने से सफलता मिलती है...उन्हें अपने घर के दृश्य याद आने लगे... किस तरह पत्नी को घायल अवस्था में छोड़ कर आये... सन्तान बिलख रही थी... माता पिता बेहोश हो गये थे... नोकर के चेहरे पर पड़े फफोले...प्रातः से अपशगुन हो रहे थे... दूध घी का ढूलना... गाय का मरण... बिल्ली का रास्ता काट जाना... काल चौघड़िया में लक्ष्य पूर्ति के लिए निकलना असफलता की निशानी ही तो है... ओह ! अब एक साथ मस्तिष्क में छा रहे थे... ओह यह सब पहले क्यों न सूझा।

माता पिता पत्नी सबने रोका... ओह यही तो आफत है अनेकों वार कहा, चलते हुए न टोकना चाहिए परन्तु सुनता कौन है ?

प्रातः भोर की पहली किरण के आगमन से पूर्व ही लोग क्षिप्रा नदी के किनारे भगवान का नाम पुकारते हुए आने लगे। कोई निबटने लोटा लेकर आया था तो कोई हाथ में स्नान के वस्त्र। कोई दौड़ लगा कर अपने जीवन में ऊर्जा भरने का प्रयास कर रहा था। श्वेत दाडी वाले दंडी साधू सूक्ष्म लंगोट बांधे समिधा लेने आ रहे थे... कुछ महिलायें पूजा के फूल चुनने आईं थी।

कुछ और प्रकाश हुआ प्राच्य दिशा लाल हो रही थी मानो इस दृश्य को देखते ही दिशाएँ क्रोधित हो उठी हों... सब ही की नजर एक साथ ध्यानस्थ साधू एवं चारों मंत्रियों पर पड़ी। मुंह से एक साथ... हाय... ऑफ़... अरे... निकल पड़ा। कुछ ने मंत्रियों को पहचान लिया... कुछ ने क्रूरता का निंदा पुराण... कुछ ने आलोचना... कुछ ने शिकायत के स्वर में वार्ता व्यापार प्रारम्भ कर दिया। कुछ मुनिराज की ध्यान साधना, आत्म ज्ञान से प्रभावित होकर प्रणाम करने लगे... गुणगान करने लगे... अश्वारोही सैनिक के द्वारा यह समाचार राजन तक पहुँच गया...चारों ओर हास-परिहास, आलोचना, घृणा, रति-अरति, भय, शोक, जिज्ञासा सारी कषाये अपना प्रदर्शन कर रहीं थीं।

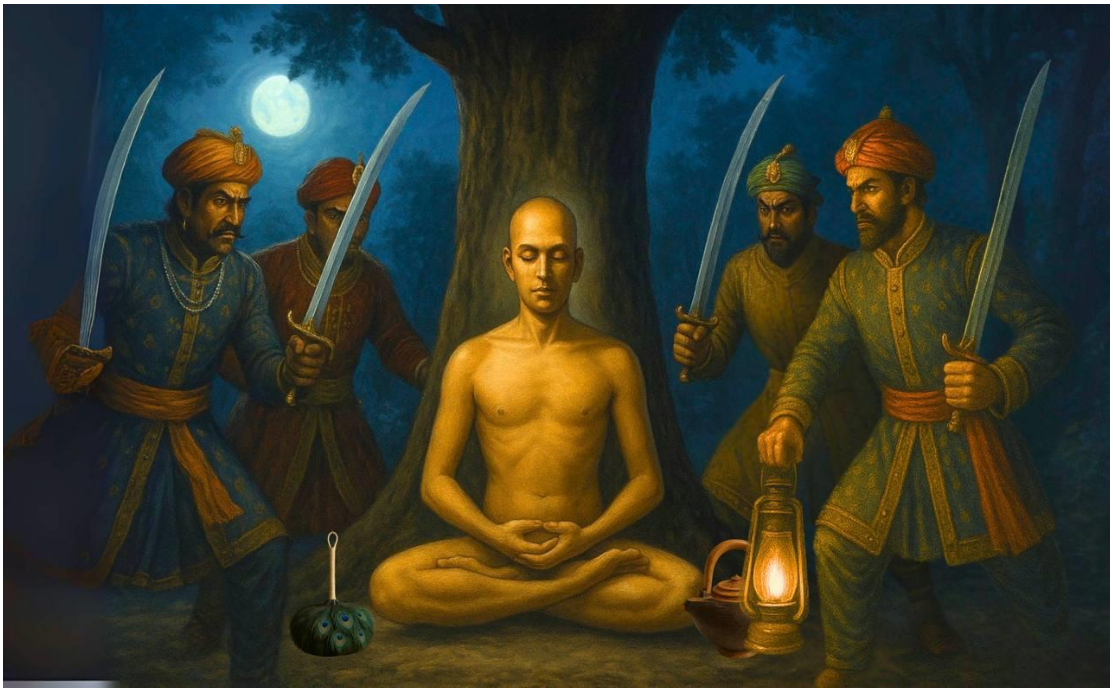

श्रुतसागर जी – (मन ही मन) अरे आत्म अज्ञान दशा में मैंने भी ऐसे कितने पाप किये हैं... अनादि काल खोया है...मेरी और से तो सहज क्षमा थी, है और रहेगी...जीव को स्वभाव के समीप से न देखो तो दुष्टता, क्रोध, अनादर, अपमान, पापीपना, भुतार्थ भासित होते हैं परन्तु इन भावों से भिन्न एक ध्रुव स्वभाव के समीप जाकर देखो तो जीव तो सदा भाव कर्म से असंयुक्त ही शोभायमान हो रहा है...इन्हें यह समझ में आ जाए तो आनन्द हो जाए...एक दिन इनकी भी काललब्धि आएगी ही... भवितव्य अनुसार बनाव अवश्य बनेगा...फिर यही जीव वीतराग दशा में कैसे शोभेंगें... चिर काल तक मोक्षमहल में संग रहेंगें...अंनत अतीन्द्रिय सुख सागर में मग्न... "रहियें अनंतानंत काल यथा तथा शिव परिणये।"...

आज उज्जैनी की सारी दिशाएँ जन प्रवाह मानो जल सरिता की भान्ति एक ही दिशा की ओर वही जा रही हो। हर बीथी से नर-नारी, बाल-बच्चे, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही, बैलगाड़ी जिसके पास जो साधन था उसही से चले-बढ़े आ रहे थे। साधन विहीन प्रजा अपनी संतानों को गोद में सिर-कंधे पर सवार करके तो कुछ सन्तान की ऊँगली थामें क्षिप्रा किनारे चले आ रहे थे।

जैन श्रावक समूह आज जिन मन्दिर जाना भूल गये और समूह के समूह ढोल मंजीरे नगाढे लेकर भक्ति तान छेड़ें हुए यही जमा हो रहे थे। जिसमें पक्षियों के कलरव विलुप्त हो गये थे अथवा तो मानो गौरैया, मैना, तोता, कोयल, बन्दर, गिलहरी, टिटहरी, मुर्गी, चूजे सब ही मुनि भक्ति में ही लीन होकर गा रहे हों।

अपमानका बदला लेने आये चारों मंत्रियों को उपसर्ग करते देख देव ने कीलित कर दिया अथवा तो नगर जनों के सामने अपराधियों को देखा जा सके इसलिए मानो देव ने उन्हें मारा सताया नहीं होगा... अथवा तो आयु कर्म बलवान होगा... अज्ञानियों को मारने से क्या लाभ... उनमें सुधार होना ही मात्र देवों को इष्ट रहा होगा... असाता अपयश का इतना ही उदय रहा होगा...चारों की पत्नियाँ, माता पिता घायल अवस्था में भी यहाँ आकर बिलख रहे थे, राजा-रानी, नगर सैनिक, अन्य अमात्य गण आदि उपस्थिति थे परन्तु किसी को कुछ सूझ न रहा था। विमर्श परामर्श का दौर चल रहा था। सबने एक साथ मुनिराज से क्षमा याचना की। तब एक सुंदर देव ने प्रगट हो कर मुनिराज को प्रणाम किया और रत्नों से पूजा की।

अरे ! देव द्वारा नमस्कार...इससे मैं कहाँ बड़ा हुआ हूँ... सारे जीव भव्य हैं... एक घटना के निमित्त से कितने जीव अपने भाव अनुसार पुन्य पाप बाँध लेते हैं...यह भी भव्य जीव है... अतः जिनशासन प्रभावना में निमित्त बनने का भाव उसे आया हैं।

सबकी अनुनय-विनय सुनकर देवने उकील दिया परन्तु भविष्य में कभी भी किसी भी साधू को साधना में बाधा न डालने के चेताके-संकल्प कराके अंतर्धान हो गया।

श्रुतसागर जी ने ध्यान से निवृत होने पर प्रथम दृष्टिपात में ही राजन के अश्रुपूरित नेत्र में पश्चाताप युक्त अनुनय विनय के भाव देखे... दाया हस्त कमल उठा... स्वस्ति राजन...

राजा ने चारों को बंधन युक्त करने का हुक्म दिया और मृत्यु दंड दिया...सब ही ने मंत्रियों की भर्त्सना की।

श्रुतसागर जी ने सुना...मृत्यु दंड...राजन की घोषणा से प्रजा में उठता घृणा का ज्वार...अरे क्या एक अहिंसक आत्म साधक के सानिध्य में ही हिंसा... नहीं...यह तो कलंक का इतिहास बनेगा...भले ही कोई आत्म

आराधना न करे परन्तु विराधना तो नहीं ही होनी चाहिए... दुर्लभ मनुष्य भाव पाकर सुधरने का अवसर तो मिलते रहना चाहिए।

मुनिराज ने भूले हुए भगवान आत्मा को भव्य जानकर अल्प काल में सुधार होते देखकर... शांत हों राजन... क्षमा करने से बड़ा दंड अन्य नहीं है...इन्हें मुक्त करने योग्य है।

चारों मंत्रियों के आश्चर्य का पार न रहा... हमने तो महा अपराध किया और यह हमें क्षमा कर रहें हैं। अंदर में फिर अकड़ ने जन्म लिया नहीं हमें इनकी दया की जरुरत नहीं है। हमें आप दंड दे सकते हैं।

श्रुतसागर विचार रहे थे...मेरे पापोदय में यह तो निमित्त मात्र हैं...राह चलते हुए वार्ता करने का अपराध तो मेरे से हुआ था...जब मुझे ही उदय में शिकायत नहीं तो आप वृथा ही क्षुभित न हों...अज्ञान दशा में किससे चूक नहीं होती है... इन्हें अपनी भूल सुधारने का अवसर मिलना ही चाहिए...योग्य मंत्री राज्य के लिए रत्न समान होते हैं... प्रकृति ने इन्हें पर्याप्त दंड दे ही दिया है...

मुनिराज स्मित वदन हो आये।

राज दंड भी तो मिलना चाहिए। राजन ने तर्क किया

श्रुत सागर - राजन ! दुखी व्यक्ति को दुःख की अभिव्यक्ति करने का अधिकार होता ही है।

राजन – परन्तु उसकी भी तो मर्यादा होती है...

श्रुत सागर – वस्तु स्वरूप की मर्यादा पर्याप्त है। वहां अन्याय हो ही नहीं सकता है। जो मेरे साथ हुआ मैं उसका अधिकारी था।

राजन – आप ! आश्चर्य से...

श्रुत सागर – हां राजन ! पापोदय के बिना बाह्य निमित्त अकिंचित्कर ही होते हैं। और पाप के उदय में भी मात्र उन पर आरोप ही तो आता है।

राजन – क्षमा करे प्रभु ! सारी प्रजा के सामने मेरा न्याय भविष्य में इस प्रकार की घटना-दुर्भावना दुश्चेष्टा की पुनरावृत्ति रोकने में समर्थ होगी।

मैं आज बहुत दुखी हूँ। इन मंत्रियों को देखते ही... आज की घटना के स्मरण मात्र से क्षुभित हो जाउंगा... मैं आज से इनका मुख भी नहीं देखना चाहता हूँ... इन्हें मेरे देश से जाना होगा...जाना ही होगा... आपकी करुना से आज इनके प्राण तो बच गये हैं... अन्यथा प्रजा इन्हें आज ही जीबित न छोड़ती...(मंत्रियों की ओर देखते हुए) जाओ निकल जाओ मेरे देश से (ऊँगली उठाकर दूर दिशा की ओर इंगित करते हुए चीखा राजन।)

नागरिक आपस में बातें कर रहे थे – “अमात्य पद के अयोग्य होते हैं जो अर्थ हीन बाते करते हैं”, “धर्मांध व्यक्ति-धर्म निरपेक्ष नहीं होते”, “धन से भ्रष्ट होने का स्वभाव वाला, सर्वप्रियता का अभाव, अभिमानी, द्वेषी, पर पीड़क, ईर्ष्यालु, शासन सेवा के योग्य नहीं होता है।”

"जितेन्द्रिय हो, त्यागी सेवाभावी हो वही योग्य राजा एवं मंत्री बन सकता है। राजा ने ठीक ही किया है।"

चारों मंत्री अपयश कलंक से मर तो चुके ही थे परन्तु नीचे देखते-२ वहां से किसी तरह जाने में समर्थ हो सके थे, इसका उन्हें भी आश्चर्य हो रहा था। उनके परिजन कुछ आवश्यक सामग्री वस्त्र भोजन धन आदि ले आये परन्तु सारे रास्ते मौन चले जा रहे थे।

राज्य में सर्वत्र समस्त मुनि संघ की पूजा-प्रसंशा होने लगी। श्रुत सागर की कथा वार्ता घर-२ में उपसर्ग विजय, जिन शासन, तप तेज, धैर्य, देवानुप्रियता रूपी विशेषताओं की सुरभि सहज ही प्रसर रही थी।

परन्तु उपसर्ग विजेता के श्री संघ में आने पर कोई विशेषता न थी क्योंकि सब ही मुनिराज ज्ञान ध्यान में गम्भीर, उपसर्ग विजेता, परिषह जीतने में शूरवीर, रिद्धि सिद्धि के धारी थे। यह प्रसंग उनके लिए जीवन की सामान्य घटना से ज्यादा कुछ न थी।

स्वयं श्रुत सागर जी ने समस्त श्री संघ को प्रणाम-नमोस्तु किया।

भेद विज्ञान में कुशलता जानकर सब प्रशांत थे। धन्य है देह दृष्टी त्याग, पूण्य उदय से अप्रभावीपना-विरक्ति, पापोदय में अदीनता, ध्रुव स्वभाव में एकाग्रता-तल्लीनता, भवितव्य में शिकायत नहीं, होनहार में ग्लानी नहीं, प्रशांत मौन श्री संघ का अच्छे से परिचय दे तो रहा था।

सच है सच्चा आत्म आराधक ही जिन शासन का सहज प्रभावक होता है। इसमें नवीन क्या है।

मंत्रियों का हस्तिनापुर में आगमन

हस्तिनापुर के चक्रवर्ती महापद्म के परिवार रूपी व्योम में यू तो ९६००० रानियों एवं अनेकों सन्तान रूपी नक्षत्र थे परन्तु अपनी एक महारानी लक्ष्मीमति से २ पुत्र थे जो उपमा में सूर्य एवं चन्द्र समान थे नाम थे पद्मरथ एवं विष्णुकुमार।

एक वार महापद्म चक्रवर्ती अपनी ८ पुत्रियों की जैनेश्वरी दीक्षा देखकर विरक्त हो गये और अपने छोटे पुत्र विष्णु कुमार के साथ सागरचन्द्र आचार्य से जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मोक्ष की प्राप्ति की। विष्णु कुमार महातप के बल से अनेकों रिद्धियों को प्राप्त हो चुके थे परन्तु उन्हें तो मात्र चैतन्य रिद्धि की ही खबर थी।

राजा पद्मरथ राज्याभिषेक के बाद अपनी रानी पद्मावती के साथ राज्य करते हुए बड़े सुखी थे। चारों और आराधना प्रभावना के प्रसंग बना करते थे। प्रत्येक गुन्स्थान के जीव उस राज्य की शोभा बढ़ा रहे थे।

इधर चारों मंत्री सपरिवार अपना यश सम्मान धन वैभव भोग प्रतिष्ठा सब कुछ गंवाकर पूर्व में बांधे पापों का फल एवं लोक व्यापी अपयश वश अनादर भोगते हुए कहीं पल भर भी चैन न पा सके। उन्हें कभी भी किसी ने कहीं भी शरण नहीं लेने दी। स्वयं के बंधुजनों ने तक साथ छोड़ दिया था। सच है "पापोदय में नहीं सहाय का निमित्त बने कोई।"

अपमानित चारों मंत्री जैन धर्म एवं उनके साधकों से वैर रखते हुए... उन पर कोप करते हुए... कभी वे सोचते श्री धर्मा को देख लेंगें... नंगों की बातों में आ गये... वनदेव ने कील दिया... उफ़...नंगे तांत्रिक साधुओं को जीतना ही पड़ेगा... कभी तो अपना भी दाव आयेगा... न बदला लिया तो मेरा नाम नहीं...रास्ते में पत्नी बच्चों माता-पिता भाई-बन्धुओं को दिलासा देते चले जा रहे थे...इंदौर निकटवर्ती होने से उन्हें वहां जीवन जीना आसान न होगा... दक्षिन में जाना ठीक नहीं हैं... अतः दूर इंद्रप्रस्थ की तरफ जाने का विकल्प आया... रास्ते में पूजा पाठ क्रिया काण्ड से उनका काम तो चला परन्तु पापोदय से आगरा, मथुरा, इंद्रप्रस्थ आदि में कहीं भी शरण न मिली स्थाई रोजगार एवं अपनी प्रतिभा के योग्य सम्मान की तलाश में विचरण करते हुए हस्तिनाग्पुर आ पहुंचें।

उनके भाग्य से यहाँ एक घटना का बनाव भी बन गया। निकटवर्ती राज्य जो घने जंगल में वसा हुआ था और उसका किला मवाना नगर में बड़ा सुरक्षित था। वहां तक जाने के लिए क्रूर अटवी में से होकर जाना पड़ता था। यहाँ का राजा सिंहबल बलवान हो जाने से अपने मित्र, स्वामी एवं देश के प्रति द्रोह से भर गया और उसके सैनिक हस्तिनाग्पुर के आधीन सीमा में प्रवेश करके जन-धन, अश्व-गायें, यहाँ तक कि कन्याओं तक का हरण कर के दुर्ग में जाकर छिप जाते थे। प्रजा त्राहि-२ कर रही थी। पद्मराय इससे वेहद चिंतित थे, उन्होंने राज्य में मुनादी पिटवा दी जो भी व्यक्ति सिंहबल राजा को जिन्दा या मुर्दा पकड़ कर लाएगा उसे वह अपना आधा राज्य पुरुष्कार में देगा।

इसे सुनकर अनेकों दिनों से हेरान परेशान चारों मंत्रियों ने सोचा भूखे मरने से अच्छा है कोई काम करना, यदि सफल हो गये तो सम्मान एवं सुरक्षा को पाकर जीवन यापन कर सकेंगें।

राज दरबार में जाकर राजा से एकांत में मिलने पर अपनी गुप्त योजना बताई। सिंहबल को लाने का वचन दिया। राजा ने उनके पराक्रम के बारे में जानना चाहा, परन्तु उन्होंने अपने भूतकाल के बारे में कुछ भी न बताया।

हे राजन ! हमें आपसे कुछ भी नहीं चाहिए। सफल होने पर ही आपकी सेवा करने का सोभाग्य चाहेंगें ।

आप इसे कैसे सम्पादित कर सकेंगें ?

योजना विस्तार से समझाई। योग्य सैनिक एवं कुछ नर्तकी, मनोज्ञ वेश्याएं एवं अच्छे किस्म की मदिरा की मांग की।

उन चारों ने सिंहबल की कमजोरी का अध्ययन किया और गुप्त रूप से अपने अनुचरों रक्षा कर्मियों को किले में प्रवेश करा दिया और राजा की भोग लिप्सा को शांत करने के नाम पर सुर, सुरा एवं सुंदरियां प्रस्तुत की। जिससे भील समान राजा भील समूह में अपनी महान प्रतिष्ठा समझकर उन भोगों में आँख मूँद करके मग्न हो गया।

और सुर सुरा में डूबा हुआ राजा भोग काल में मदहोश था तब महल में छिपे हुए अंग रक्षकों ने महल पर कब्जा कर लिया। बाली नमुचि ने एक साथ सिंहबल को घेर लिया उसकी तलवार तक उसके पास न थी। वह अस्त व्यस्त अर्द्ध नग्न सा शर्मिन्दा होता हुआ भोग शैया से उठा और चीखा... मेरे साथ धोखा हुआ है... हाय इन भोगों ने मुझे कहीं का न छोड़ा। जैसे मैंने धोका देकर अनेकों कन्याओं को एवं धन को हरा आज उसके फल में, मैं भी ठगा गया। वेश्या एवं नर्तकी की आड़ में छिपी सेना ने उसे बंधन में डाल दिया और ले चले बांधकर अपने अश्वरथ पर।

नगर में प्रातः होती उससे पूर्व ही राजा को बंदी बनाकर हस्तिनापुर को कूच कर गये। सेना ने हथियार डाल दिए थे। नर नारी उदास, अपने राजा के भोग एवं पराजय से हताश थी, मवाना नगर में हस्तीनापुर राजा की ओर से शान्ति व्यवस्था बनाये रखने की मुनादी पीट रही थी।

सब यंत्र चलित से अपने रोजगार पर जा रहे थे महिलायें भोज बना रहीं थी बच्चे विद्यालय जा रहे थे रोगी एवं चिकित्सक अपने कर्तव्य को पूरा कर रहे थे सब कुछ रोज की तरह हो रहा था ग्राहक एवं व्यापारी भी सदा की भाँती अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहे थे परन्तु मुस्कान राजा के साथ कब विदा ले गई ज्ञात ही न हो सका। आशंकित हृदय चोकन्नी निगाहें अनहोनी न हो जाए ऐसी कामनाओं का ज्वार था।

राजमहल में सन्नाटा छाया हुआ था रानियों के रुदन स्वर रह-रह कर गूँज रहे थे।

राजा पद्म राय से सम्मान एवं पद पाना

चारों मंत्री सिंहबल को लेकर हस्तिनापुर में आ पाते उससे पहले नगर में उत्सव का वातावरण बन गया। विजयोत्सव धूम धाम से मनने लगा। सेना प्रजा जनों ने गाजते बाजते नगर की बीथियों में उत्सव मनाते हुए नृत्य करते हुए मंगल गान, जय जयकार करते हुए राज दरबार में पहुंचे वहां राजा ने बाली, नमुचि, प्रह्लाद, बृहस्पति का अनर्घ वस्त्र एवं आभूषणों की अनेकों मंजुशाओं से सम्मान किया।

पद्मराय – आज हमने एक वीर सेनानी को पाया है। एक पराक्रमी पुरुष किसी भी राज्य का रत्न होता है। हम चाहेगें कि यह रत्न हमारे यहाँ आधा राज्य प्राप्त करे और सदा हमारे राज्य की शोभा बढावे। मन बहुत प्रसन्न

है। हमने इनसे सीखा है कि – "जहाँ शक्ति काम नहीं आती वहां युक्ति से काम लेना चाहिए।" आज हम इनका जितना आभार माने उतना कम है।

यथेच्छीत वर मांगो बाली... (राजा-प्रजा के हर्ष का पारावार न था)

हे राजन ! हमें कोई राज्य नहीं चाहिए। बस आपके चरणों की सेवा एवं प्रजा की रक्षा करना ही हमारा परम सोभाग्य है। (बाली ने निष्पृहता दिखाई)

खचाखच दरवार अंतर्मुहूर्त तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज गया। सब को ऐसा लगा मानो साक्षात बृहस्पति उनकी रक्षा को आ गये हों, और वे सदा के लिए सुरक्षित हो गये हों।

चारों को अपना मंत्री घोषित कर दिया गया।

सिंहबल को दरवार में पेश किया गया। उसका नशा अब तक उतर चुका था। वह दृष्टी न उठा पा रहा था। अपनी पत्नी, सन्तान, माता-पिता की स्मृति उसे विगलित कर रही थी।

पद्मराय- इसे मृत्यु दंड दिया जाता है। इसने हमारे राज्य के साथ बहुत धोका, विश्वास घात, राज्य द्रोह एवं प्रजा के साथ अन्याय किया है। (सुनते ही कांप उठा सिंहबल)

नहीं राजन !... बाली ने टोका

सारी प्रजा चोक उठी...यह कौन बोला ? जिज्ञासा एक ही और देखने को विवश हो गई।

स्वामी ! आप निर्णय करने को स्वतंत्र हैं।

बाली ! बोलो... अवश्य बोलो... आपका मत जानने योग्य है... (प्रसन्न पद्मराय जिज्ञासु होकर बोला।)

स्वामी ! मैं चाहता तो इसे वहीं मार डालता... (सिंहबल बाली को देखने लगा)

सिहबल एक चतुर, साहसी, बलवान राजा है। इन्द्रप्रस्थ की रक्षा के लिए ऐसे शूरवीर पृथ्वी के आभुषण स्वरूप हैं। इस रत्न को खोना नहीं चाहिए।

तो इसे मुक्त कर दिया जाय ? राजन ने जानना चाहा।

नहीं !...इसमें एक कमी हैं सुर, सुरा एवं सुन्दरी... इसे इसका त्याग या मृत्यु इसमें से किसी एक को वरण करना चाहिए।

साधू साधू... सभा कह उठी...(सिंहबल के चेहरे पर पहली वार कृतज्ञ मुस्कान खेली।)

बोलो सिंहबल... तुम्हारी एक कमी ने तुम्हें आज शोभा रहित बना दिया...

हे मित्र ! अच्छा ही हुआ जो मैं आज पराजित हुआ... मुझे मेरी जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी का ज्ञान हो गया। मैं आज से इसका त्याग करता हूँ – सिंहबल हाथ जोड़कर बोला

जब तुमने अपनी पुरानी मित्रता का स्मरण किया ही है तो आज से यह मैत्री फिर से प्रगाड़ होगी।

तालियों की गड़गड़ाहट फिर एक अंतर्मुहूर्त तक रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। इस मध्य ही पद्मराय ने स्वयं अपने हाथों से उसे हथकड़ी बेड़ी से मुक्त किया। गले से लगाया। हार-उपहार से स्वागत करके महलों में भोजन पान से सम्मानित किया और मवाना राज्य की ओर विदा किया।

घर घर में अब बस एक ही गाथा गाई जा रही थी... नये मंत्री कितने शूरवीर, विनयशील, निस्पृही, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ हैं। और बलवान सुंदर भी महिलाओं में यह एक अतिरिक्त विषय भी चर्चा का विषय था।

हस्तिनापुर में चातुर्मास स्थापना

लगभग १२ वर्ष बाद...

उज्जैनी से बिहार करता हुआ संघ अनेकों स्थान पर प्रभावना करता हुआ, अनेकों तीर्थ भूमियों को पवित्र करता-बनाता हुआ, अपने साधक परिवार को दीक्षा देकर बढ़ाता हुआ कुछ साधकों को मोक्ष जाते देखता हुआ कुछ को केवली बनकर प्रभावना करता हुआ कुछ उपाध्याय साधुओं से शोभा पाता हुआ हस्तिनापुर में जिनशासन प्रभावना के लिए बिहार कर रहा था।

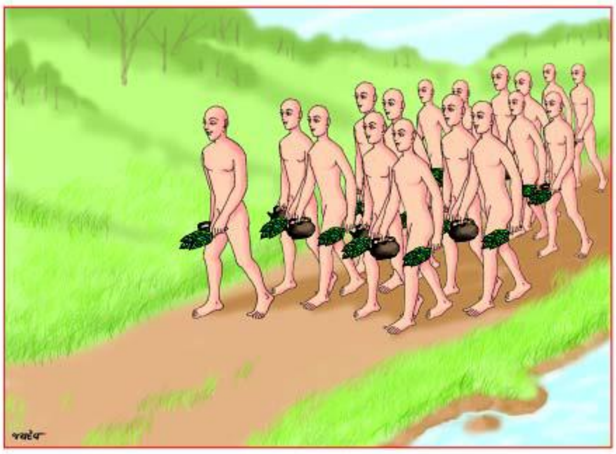

कुरुजान्गाल देश की राजधानी हस्तिनापुर सदा से ही तपस्वी ऋषियों की तपोभूमि रही है यहाँ से अनेकों साधुओं ने अपनी चरम साध्य सिद्धि-मुक्ति अर्जित की है।

एक समय चातुर्मास के समय पवनवत अनियतवासी अकम्पनाचार्य आदि सप्त शताधिक मुनिराजों का संघ हस्तिनापुर पधारा। जिनके शुभागमन

से मानो सारी नगरी वन उपवन पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गये हों। छोटी-२ पहाड़ियां इसका सौन्दर्य बढाती हैं। बिशाल भूभाग मानो तपस्वियों की प्रतीक्षा में ही अपने आँचल में सहस्त्रों वृक्षों के नीचे स्फटिक समान शिलाओं को संजोये बैठा है। यहाँ के वन में चतुर्विध संघ वन खंड में वन की भाँती ही शोभ रहा था जैसे नाना प्रकार के वृक्ष मनोज्ञता प्रदान करते हैं वैसे नाना मुनिराज अपने देह के विभिन्न आकार प्रकार रंग रूप से शोभा बढ़ा रहे थे। वृक्ष पर जैसे अनेकों प्रकार के फल फूल पत्ते शोभते हैं वैसे ही मुनिराजों के गुण निर्मल पर्याय बिशुद्धि नाना प्रकार रिद्धि सिद्धियाँ शोभ रही थी।

आषाड़ सुदी १४, के दिन राजा पद्मराय ने खूब ठाठ बाट से चातुर्मास की स्थापना समारोह मनाया। सर्वत्र श्रावक गण अति ही प्रसन्न थे। नित नये धार्मिक आयोजन पूजन विधान व्रत पूजा आदि के साथ होने वाले प्रवचन गोष्ठियां उनके अज्ञान एवं अचारित्र का हरण कर रहे थे।

बच्चों में अष्टहानिका एवं दशलक्षण पर्व मनाने का विशेष ही रोमांच - उत्सव छाया हुआ था। बस अगले माह ही तो हैं भादों... अहो खूब व्रत पूजा स्वाध्याय संयम का अवसर मिलेगा... और हर चातुर्मास के बाद कितने ही भाई बहिन ब्र. धारण कर लेते हैं कितने ही प्रतिमा लेते हैं तो कितने ही तो दीक्षा तक लेकर अपना जीवन सफल करते हैं। अहो देखो इस वार कौन-२ सोभाग्य शाली अपना जीवन सफल करता है। ऐसी विचार वार्ता व्यापार एवं अन्तरंग अभिलाषा मनो मस्तिष्क में छाई रहती है।

यह समाचार मंत्रियों से गुप्त रहने का तो प्रश्न ही नहीं था। भय संज्ञा की बाड़ में सारा अर्जित सम्मान, धन, वैभव, भोग बहता-डूबता हुआ दिखाई देने लगा।

एकांत में मंत्री सशंकित बने रहते। राजा का इतिहास, जैनत्व के प्रति गाड़ श्रद्धान, परिवार में परम्परा से होती आई दीक्षा एवं मोक्ष की कथाएं उन्होंने सुन रखी थी।

वे बदला नहीं लेंगें तो भी मुनियों ने राजा को बता दिया तो... उनका सब कुछ लुटने बाला ही है। वे जेल में बंदी बना लिए जायेंगें। ओह अब क्या होगा ? बाली परेशान था।

शायद न बतावें... बताना हो... तो...नहीं तो उस दिन मुझे प्राण दंड से क्यों बचाते ? यह साधू समता के धारी हैं... पता नहीं आज जैन राजा को पाकर बता दें तो ? नमुचि हेरान था।

ये लोग भाग्य के मारे यहाँ भी आ गये...या स्वयं का सोभाग्य... बदला लेने से वैर बढ़ता है...बदल जाने से वैर मिटता है...क्या करें ? कैसे करें ? समझ में कुछ नहीं आ रहा था। बृहस्पति आज नाम के ही बृहस्पति थे उनकी बुद्धि काम ही नहीं कर रही थी।

चलो एक उपाय है... प्रह्लाद सोचते हुए बोला

जल्दी बोलो... क्या ? जिज्ञासा से तीनों मंत्री एक साथ बोले

हम राजा से अपना धरोहर स्वरूप रखा हुआ वर मांग लेते हैं ! प्रह्लाद ने युक्ति दी।

उससे क्या होगा ? उदास होते हुए बाली बोला।

हम क्षमा-अभयदान मांग लेते हैं।- बृहस्पति बोला

शर्म करो ! बिना अपराध... किस बात की क्षमा ? नमुचि ने विरोध किया।

(हास्य से) उज्जैनी का प्रसंग बताकर... बड़ा सुंदर सुझाब दिया है... साफ़-२ आ बैल मुझे मार... और उसकी तो हम सजा भी पा चुके हैं ; नहीं हम कुछ नहीं ब्तायेंगें।

मगर जैन राजा से विश्वास पाना आसान न होगा !

जैन है तो क्या हुआ... करुना तो इनके ह्रदय में होती ही है। और अब तो हम सुधर भी चुके हैं।

हमने जैन का नहीं राजा का नमक खाया है ?

ओह तो अभी तक हम जो इतनी देर से सोच रहे थे वह जैन के नमक का असर था।

लेकिन हम तो जैन धर्म के शत्रु हैं... हमें तो इनकी उन्नति फूटी आँखों नहीं सुहाती है।

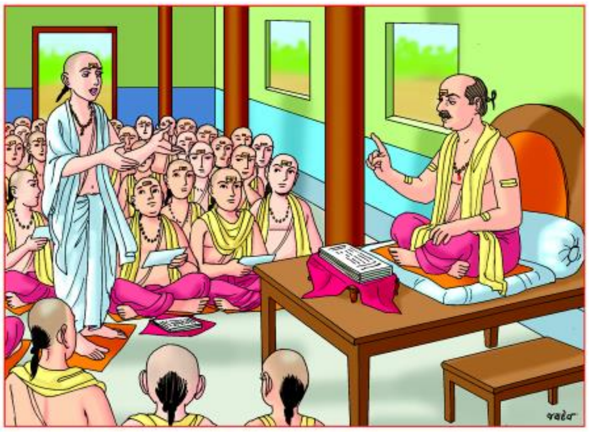

कोई भी साधू या श्रावक हमारे खिलाफ हो गया तो फिर वातावरण हमारे विरुद्ध बनते देर न लगेगी।

तो क्या हमारा एहसान भी राजा भूल जाएगा ?

शायद... धर्म की बात आने पर व्यक्ति स्वार्थी हो जाता है

ओह ! मामला गम्भीर है, तो क्या करें ?

एक काम करते हैं... न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।

उत्साहित होते हुए सब ही बाली की ओर देखने लगे।

हम एक यज्ञ करेंगें इसके लिए ७ दिन का राज्य ले लेंगें। इसकी आड़ में हम जो भी करेंगें उसका बाद में राजा दंड नहीं दे सकता है।

यज्ञ के बहाने सारे अजैन एक साथ होंगें जैन श्रावक कुछ न कर सकेंगें। प्रतिकूलता देखकर या तो सारे साधू स्वतः ही पलायन कर जायेंगें। या जो भी होगा उसके लिए हम जिम्मेदार न होंगें।

यह ठीक है। सब एक साथ सहमत हो गये।

चलो तैयारी प्रारम्भ कर दी जाय... यज्ञ तो होकर रहेगा... बृहस्पति एवं नमुचि तुम याजकों को निमत्रण देने का कार्य आज से ही प्रारम्भ कर दो। प्रह्लाद तुम सारी यज्ञ सामग्री एवं आवास यज्ञ मंडप आदि की व्यवस्था करो

मैं स्वयं जाकर राजन से निवेदन करके ७ दिन का राज्य मांग लेता हूँ। कौशिश करूंगा कि राजा यहाँ मौजूद ही न रहें।

मंत्री मंत्रणा करके एक बार कुटिल मुस्कान के साथ चल दिए। कहाँ...? सोचा तो कुछ और ही है होगा कुछ और...क्या ? भवितव्य की प्रतीक्षा करो।

सच है निर्गुणी और बुद्धिहीनों को कितना ही उपदेश दिया जाय, पर उससे कोई लाभ नहीं। मल भक्षक शूकर को किसमिस अंगूर खिलाने पर भी वह तो मल ही खाना पसंद करता है। नीम, मिर्च, आंवला अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं उस ही प्रकार दुष्ट अपना स्वभाव नहीं छोड़ते हैं। परन्तु यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि योग्यता सदा एक सी नहीं रहती है... आज का पामर कल का परमात्मा भी तो बन जाता है।

वर स्वरूप ७ दिवस को राज्य की प्राप्ति

श्रावण वदी पाचम के दिन राज दरवार लगने पर महाराजा पद्मराय को प्रणाम करके चारों मंत्रियों ने अपने धरोहर स्वरूप वर का स्मरण कराया... राजन बड़े प्रसन्न हुए... बाली, प्रह्लाद ! अवश्य मुझे याद है बोलों तुम क्या चाहते हो ?

मैं तो तुम्हें ग्राम-नगर, धन-धान्य, सहस्त्रों सर्व श्रेष्ठ गायें, अश्व, रथ, सब कुछ दे सकता हूँ...चाहो तो मेरा राज्य भी ले सकते हो (व्यंजना स्वर में मुस्कुराए) आज तुम्हारे कारण मेरा राज्य विस्तार को प्राप्त हुआ है एवं सुरक्षा, सम्मान, व्यापार सब कुछ बड़ा ही तो है।

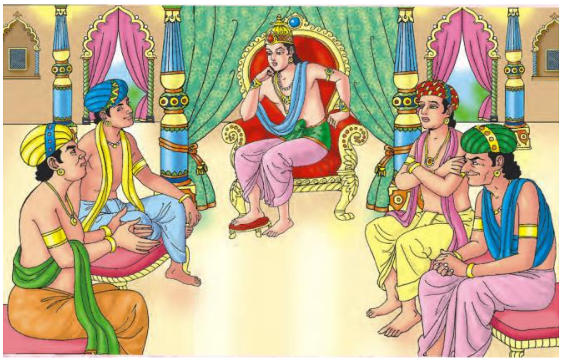

राजन ! आप चाहे तो कुछ दिवस विश्राम कर सकते हैं। हम आपका राज्य भार हल्का कर सकते हैं। (कपटी स्वर उभरा)

(विश्वस्त स्वर में) क्यों नहीं... विश्वसनीय सन्तान एवं अमात्य मंडल के होते हुए राजा को भी कुछ दिवस अवकाश में रहने का सोभाग्य मिल ही जाता है - पद्मराय मुस्काये।

मैं बहुत दिनों से अपनी रानियों के साथ आनन्द भवन में रहकर धर्म साधन करना चाहता था (लक्षणा स्वर में राजन बोले)

अवश्य राजन ! आप अष्ट दिवस पर्यन्त धर्म साधन कीजिए और अपने पूण्य प्रमाण सहज सुप्राप्त सामग्री का सम्भोग सुख देखीये।

देखो ! मुझे संकट आने पर भी याद नहीं करोगे... (उपालंभ देते हुए राजन बोले) मैं निराबाध सम्भोग सुख की अभिलाषा रखता हूँ।

भादों वदी १ को आप अपने साम्राज्य को पुनः संभाल लीजिये तब तक आप आनन्द से राज भवन में रहिये। (नमुचि ने सुझाया)

श्रावण सुदी ८ के दिन राज दरवार विसर्जित होने पर महाराजा पद्मराय को प्रणाम करके चारों मंत्रियों ने राज न्याय दंड पाया और स्वयं प्रसन्न चित से तीर्थ यात्रा की तैयारी करने के उत्साह से भरकर बोले – "कल प्रातः से श्रावण सुदी पूनम तक चारों मंत्री में ज्येष्ठ बाली को मैं राज्य संचालन का भार सोंपता हूँ। सम्पूर्ण सैन्य, रक्षा, प्रशासन, प्रजा हित आदि के कार्य धर्मात्मा, वेद ज्ञाता, करुना रस से भरे मंत्रियों को सोंपते हुए मैं विश्वस्त हूँ। और मैं सपरिवार तीर्थ यात्रा के लिए सम्मेद शिखर जी प्रवास पर रहूँगा।

तत्काल सारे प्रबंध किये जाने लगे। अगली प्रातः प्रवास यात्रा प्रारम्भ हो गई।

इधर राज दरवार में घोषणा की गई कि प्रजा भी इन अष्ट दिवसों में कोई व्यापार आदि नहीं करेगी मात्र ७ दिवस तक धर्म साधन हेतु प्रबंध करेगी। धर्मोत्सव सुनकर सब को आनन्द समुद्र स्नान का अनुभव हो रहा था। घर-घर में खुशहाली छाई हुई थी...सर्वत्र वन्दनवार... लिपाई-पुताई होने लगी,... तोरणद्वार बनाये जाने लगे...मनोहर रंगोली पूरी जाने लगी। किसी को कानो कान खबर भी न थी कि नवीन राजा के मन में कौनसा पाप पल रहा था। राजा के मन की बात कोई कैसे विचार सकता था।

एक महायज्ञ होगा जो 'न भूतो न भविष्यति होगा'। पुरोहित विद्वानों याजक ऋषि मुनियों को आमंत्रित किया जाने लगा।

बहुत बड़े भूभाग पर सफाई करके वृक्ष उन्मूलन आदि करके यज्ञ स्थल तैयार कराने में २ दिवस बीत गये। बड़े-२ कक्षों में हवि सामग्री एकत्रित की जाने लगी।

श्रावक विचार रहे थे परस्पर वार्ता कर रहे थे –

प्रथम श्रावक - "यज्ञ के नाम पर भी हिंसा करना महापाप है" दूसरा श्रावक - हिंसा त्रिकाल में धर्म नहीं हो सकता है।

श्रावक - सच है रावण ने जिन वचनों का उल्लंघन कर परस्त्री का हरण किया, कौरवों ने परिग्रह की लालसा को पूर्ण करने के लिए युद्ध किया, इसका अंत दुखद ही रहा है सो सर्व विदित है। आज भी देखना यज्ञ का नतीजा श्रेष्ठ नहीं होगा... न जाने क्यों मेरा मन आशंकित हैं।

प्रथम श्रावक - पापों में लिप्त रहने से पाप का बंध होता है। जिन्होंने धर्मार्जन किया है, वे अभी भी प्रसिद्ध हैं। अहिंसा में धर्मराज युधिष्टर को कौन नहीं जानता हैं, सत्य में कर्ण... बोला सो बोला... प्राण जाय पर वचन न

जाई... अचौर्य में अर्जुन दूसरों के युद्ध संकट दूर करने पर भी विजय दिलाने पर भी राज्य लेने से इनकार, शील में भीष्म पितामह और अपरिग्रह में रामचन्द्र जी आज भी श्रद्धा से याद किये जाते हैं।

याजकों को निमंत्रण विधि से राजसम्मान भेंट पुष्पहार, आवास, भोजन के सुंदर प्रबंध सहित महलों में ठहराया गया। चार दिवस व्यतीत हो गये।

पांचवे छटे दिवस यज्ञ विधि भजन पूजन आव्हान आदि के द्वारा कार्यक्रम का बिशाल रूप सामने आने लगा...देश भर के लाखो नर नारी बच्चे एकत्रित हो रहे थे...दूर दूर तक कपड़ो के पटगृह-डेरे ही डेरे दिखाई देते थे... पनघटों पर पनिहारों की भीड़ रात्री में उपस्थित रहता था एवं गंगा नदी के किनारों तक दूर दूर तक जहाँ -२ नजर जाती थी वहां ही जन सैलाव दिखाई देता था। परन्तु इंद्र देवता शीतल पवन मिलकर मानो इस दुश्चेष्ठा का विरोध कर रही हो। वार-२ बादल वरस रहे थे। पवन के झोके शीतलता का अनुभव करा रहे थे।

यज्ञ स्थल ७०० मुनिराजों के आसपास ही बनाया गया था। उनकी राह में हरित काय बिछा दिए जाने से श्रावकों के मन में आशंकाएं उभरने लगी थी। आचार्य अकम्पनाचार्य मुनि संघ पर आसन्न संकट से अनभिज्ञ नहीं थे। संकट दूर होने तक सभी ने सल्लेखना व्रत धारण कर लिया। सभी मौन थे...आहार चर्या के लिए कोई उठ नहीं रहा था... संघ में सबकों योग्य कर्तव्य आत्म साधना की कठिन परीक्षा की घड़ी में निज स्वरूप में सावधान रहना है ज्ञात था। सब ही प्रतिमा योग धारण करके विराज गये। श्रावक ब्र. आदि आहार चर्या आदि न हो पाने से दुखित थे।

समाज ने सभा की तो रोष जमकर उभरा...कोई बोला – कैसा है राजन... जैनों पर संकट छोड़कर चला गया। ऐसा कोई राजा होता है जो अपने नगर में मुनि संघ विराजमान है और स्वयं तीर्थ यात्रा पर चला गया।

"बताओ ! ऐसा कैसा धर्म जो दूसरों को कष्ट दे... जैन एवं अन्य लोग अपने दान पूजा कैसे करेंगें यह भी नहीं सोचा। राजाज्ञा भंग कर नहीं सकते हैं।"

"मुनि संघ के निकट यज्ञ क्यों किया जा रहा है ? क्या मुनियों को धुँआ आदि से प्रतिकूलता नहीं होगी ? संदेह का स्वर उभरा।"

"सच है कहीं ओर भी तो किया जा सकता था।"

"मन में कुछ और है... इसीलिए जैनों को इस यज्ञ प्रबंध से दूर रखा गया है।"

"जैन अमात्यों तक को विश्वास में नहीं लिया गया है "

हमें इसका पुरजोर विरोध करना चाहिए।

चलो... हम न सहेंगे अत्याचार... विरोध का स्वर मुखरित हुआ।

बाहर आते ही राज सुरक्षा अधिकारियों ने उन्हें वंदी बना लिया। सबको शान्ति से घर जाने की आजादी दी गई अन्यथा धमकिया मिलने लगीं।

चीखने बालों की पिटाई की जाने लगी...कमजोरी स्वरूप दूध पीते बच्चों को छीने जाने लगा। फलतः मुनि रक्षा का विकल्प आत्म रक्षा में बदल दिया गया। समाज सभा का उद्देश्य बिखर गया। घर-२ में रुदन उदासी आशंकाएं तैर रहीं थी।

बुजुर्गों ने अपने अनुभवों से युवाओं के आक्रोश को शांत किया और स्वयं गहन विचार बीथियों में भ्रमण करने लगे। ऊपर से शांत रहने... तेल देखो तेल की धार देखो...वाक्य को आदर्श बनाकर शांत दिखने में ही सार था।

जैन नगर श्रेष्ठियों गणमान्यों द्वारा राज दरवारी अधिकारी के निकट जा जाकर गुप्त वार्ताएं की जा रही थी। हल खोजन के उपाय किये जा रहे थे। हर आशंका का समाधान खोजा जा रहा था।

सब ही जिनेन्द्र गुणों का स्मरण कर रहे थे। सब ठीक ही रहे ऐसी भावना भा रहे थे। आँखों से नीर झरने का अचम्भा नहीं था... घर-२ में महिलायें चूल्हा नहीं जला रहीं थी... खान पान व्यवसाय शिक्षा का कार्य रुक गया था मात्र भक्ति, खेदवार्ता, कर्तव्य विचारना कर करके ही साता प्रकृतियों का आश्रव, साता का उतकर्षण, असाता का अपकर्षण एवं असाता का साता में संक्रमन का उपाय कर रहे थे।

उद्यत युवाओं का खून खोल रहा था...वे तलवारें चमका रहे थे... आज नहीं तो कभी नहीं का नारा लगा रहे थे... जान की बाजी लगाकर भी मुनियों की रक्षा करेंगें। मंत्रणायें चल रहीं थी। सेना नायक को यज्ञ के नाम पर मनमानी करने से रोकने का प्रबंध करना चाहते थे। बहुत कुछ मन में चल रहा था... उससे कम शव्दों में व्यक्त हो पा रहा था... काय से तो बिलकुल शान्ति सी दिख रही थी परन्तु अंदर बाहर बड़ी-२ आशंकाएं डरा रही थीं।

स्वर्ग में इंद्र सभा

नीरव शान्ति... इतने बड़े विश्व में ७०० करोड़ मनुष्य सम्यकदृष्टी, असंख्य तिर्यंच असंख्य नारकी असंख्य देव समकिती १३ करोड़ पंचम गुणस्थान वर्ती, ३ कम नो करोड़ मुनिराज... अहो इतने साधकों में से कभी किसी सम्किती या साधू पर आने वाले संकट के साथ उन्हीं के साता वेदनीय का प्रबल उदय आना हो, जिन शासन प्रभावना का कोई अवसर आया हो तब कहीं देवों अथवा इंद्र को कोई विकल्प आता है और वे मूल स्थान छोड़े बिना अपनी विक्रिया अथवा कौतुहल से अपनी देह रचना को सक्रिय करते हैं। अन्यथा अनंतानंत पर्याय समुद्र में इन पर्यायों की कौन गणना !

१७० तीर्थंकरों के एक साथ पृथ्वी की शोभा बढाने पर भी इंद्र अपना मूल स्थान नहीं छोड़ता... एक भी समकिती नहीं बढ़ता...साधू नहीं बढ़ता...केवली नहीं बढ़ते...वे ही ८ लाख ९८ हजार ५०२ अर्हन्त सदा रहते हैं। कितना शांत है विश्व...कितना क्रमबद्ध... सुव्यवस्थित...एक दम निराकुल...सुंदर... कहीं कोई कर्तृत्व का स्थान नहीं... सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हैं... आकुलता तो मात्र अज्ञानी के चित्त में हैं...नरक में घोर पीड़ा... और यहाँ भी असंख्य तीर्थंकर प्रकृति का ध्रुव बंध जारी है वाह्य दशा कुछ भी चल रही हैं...कषाये... प्रवृत्ति अमन भावन होने पर भी एक अजीव सी शान्ति है।

आज भी इंद्र सभा में नृत्य... संगीत... तत्व वार्ता...अकृत्रिम जिन मन्दिरों में अभिषेक पूजन वंदन...समोशरण में जाना सब कुछ यथावत था। ज्योतिष देव अपने मार्ग में भ्रमण कर रहे थे...प्रत्येक जीव अपने उदयानुसार प्रवृत्त होता है उसमें कोई किसी को सहाय/ साधक बाधक कैसे बने। स्वयं को अभीष्ट फल ही मिलता है भले ही आज वह न सुहाए अथवा आप वीतराग हो जाओ यह तो महा पुरुषार्थ होता है... तदैव आज भी शान्ति है।

मध्य लोक में होने वाले उपसर्ग निवारण का विकल्प कुछ देवों को आया परन्तु वे भी एक समय मात्र को आगे पीछे न कर सके... उन्होंने अपने नमन, सहाय विकल्प से मात्र साता-पूण्य का ही बंध कर लिया...समय आने पर होने वाले केवलज्ञान अथवा मुक्ति गमन करने वाले मुनिराजों का उत्सव अनुमोदन करने आ सके... गन्धकुटी रचना हुई...और जो जल चुके थे...देह छोड़ चुके थे... घायल हो चुके थे...उन्हें समय पूर्व बचाने में वे भी असमर्थ ही रहे...समय से भी साता के बनाव ने ही उन्हें बचाया। अहो !

दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे ! अपराधी वह भगवान॥

विष्णुकुमार मुनिराज का हस्तिनापुर आगमन

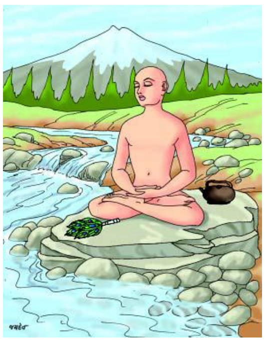

श्रावण सुदी चतुर्दशी...ज्योतिष मंडल में भी रात्री काल में श्रावणी नक्षत्र कम्पित हो रहा था...कहीं दूर मिथिलापुरी के समीप के पर्वत पर बाह्य उपवन में रात्री में किंचित निद्रा के समय आचार्य सागरचन्द्र की दृष्टी इस पर गई और वे चोक गये...उनके मुखारविंद से अचानक अपशगुन सूचक... आह निकल ही तो गई...निकट स्थित सावधान विद्याधर क्षु.पुष्पदंत ने आह सुनी तो वह चकित हो गया... अहो अवधिज्ञानी शान्ति सिन्धु आचार्य के मुखारविंद से असमय यह क्या शव्द निर्झरित हुआ... वह विचारता रहा।

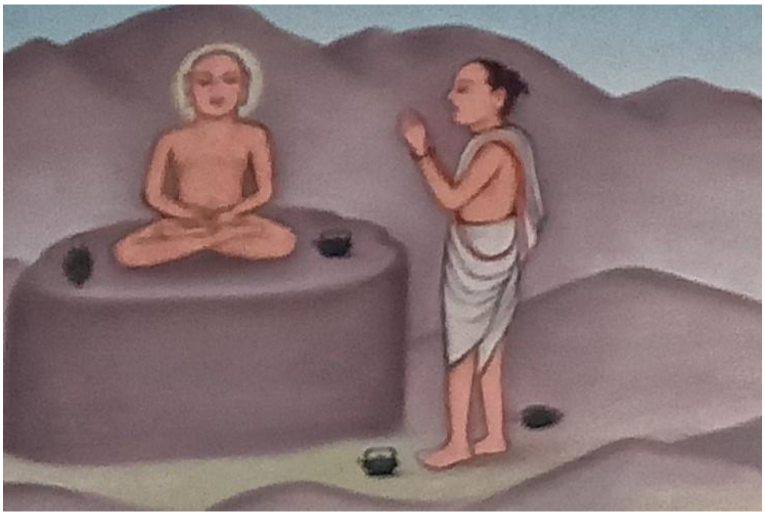

कृति कर्म (सामायिक, प्रतिक्रमण आदि षटावश्यक) करने के उपरान्त अपने मन की जिज्ञासा उमड़ पड़ी। पुष्पदंत ने पूछ ही लिया...

गंभीर गिरा से हस्तिनापुर में मुनि संघ पर आसन्न संकट का ज्ञान होने पर समाधान पूछा।

“जाओ ! धरणीधर पर्वत की गहन गुफा में महा तपस्वी, रिद्धि धारी, आगम अध्यात्म के महान वेत्ता, इन्द्रों से पूजित महा मुनिराज विष्णु कुमार को बतलाओ कि इस समय जिन शासन की प्रभावना का समय आ गया।”-आ.सागर सेन की आज्ञा हुई

क्षु.पुष्पदंत विद्याबल से आकाश मार्ग से गमन करके क्षण भर में धरणी-धर पर्वत पर पहुँच गये और स्वयं भी जब तक मुनि संघ की रक्षा नहीं हो जाती तब तक पारणा नहीं करेंगें का नियम धारण कर लिया।

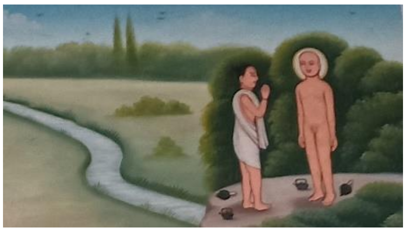

क्षु.पुष्पदंत ने महामुनिराज विष्णु कुमार को नमोस्तु करके आचार्य श्री का आशीर्वचन कह सुनाया। गुरुआज्ञा को सिर माथे रखकर ततक्षण उन्होंने अपनी अज्ञात रिद्धि का स्मरण किया और जैसे ही दायाँ हाथ फेलाया...अरे यह तो बढ़ता ही गया और क्षण मात्र में मेरु पर्वत का स्पर्श कर गया... अपनी रिद्धि को संकोच कर तत्काल आकाश मार्ग से हस्तिनापुर पधार गये... अवधिज्ञान में अंतिम दिवस को मुनि संघ पर संकट की तैयारी दिख रही थी।

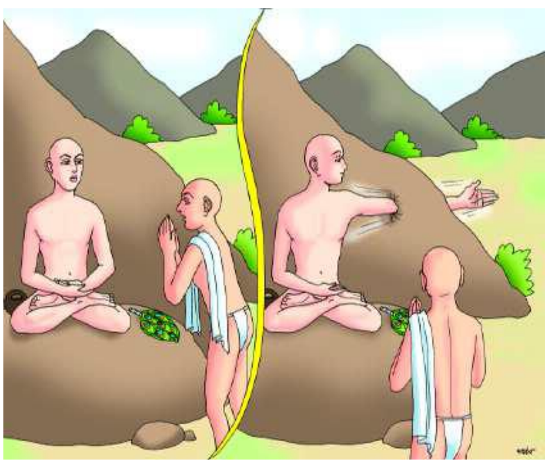

धन्य हैं विष्णु कुमार मुनिराज जिनको विक्रिया रिद्धि उत्पन्न हुई परन्तु उसका लक्ष्य भी नहीं था एवं धन्य है उनकी निष्पृहता जिसका अभिमान नहीं, ख्याति लाभ पूजा से कोषों दूर रहने वाले मुनिराज सदा जयवंत वर्तें।

‘तप घोर करें आकाश चलें, हैं पार नहीं जिनके बल का।

मन बांछित रूप बना सकते, भारी हल्का लम्बा छोटा ॥
पर नहीं प्रयोग करें उनका, निज ख्याति लाभ पूजा हेतु ।
उन सम जड वैभव ठुकराऊं, तब होते वे मुक्ति सेतु ॥'

क्षु.पुष्पदंत धरणीधर पर्वत की गुफा को प्रणाम करके वहां की पवित्र चरणरज को मस्तक पर धारण करते हुए...अहो ! जहाँ विष्णु कुमार ने रहकर ऐसी जिनशासन प्रभावकारी रिद्धियाँ प्रगट की हों और फिर भी निष्काम रहे...निस्पृही... अपनी प्रभुता में तल्लीनता... पीछीयुत करबद्ध को मस्तक से स्पर्श कराते गुनगुनाते वापस वैभारगिरी पर अपने गुरु के निकट आ गये । वहां भी मन नहीं माना तो वापस हस्तिनापुर में आकर कौतुक देखने लगे ।

हस्तिनागपुर में चारों ओर श्रावक, श्राविकाओं, शिशुओं, बाल बच्चो का विलाप-हाहाकार, असहाय स्वर ही गूँज रहा था । जहाँ देखो राज सैनिकों का अत्याचार हो रहा था । बली हेतु पशु संग्रह अपने चरम पर था उन्हें स्वर्ग पहुचाने का कहकर प्रजाजनों के गाय भेंस बैल अश्व एकत्रित करने हेतु बलात छीने जा रहे थे,

श्रावक गण अपने पशुओं को छुपाने बचाने का असफल प्रयास कर रहे थे तो उनके बच्चों को पकड़ कर ले जा रहे थे । पशुओं का चीत्कार कानों के परदे फाड़ रहा था । बली में पड़े पशु एवं मुनि देह के जलने से उत्पन्न दुर्गन्ध नाक को भेदे जा रही थी ।

मंत्रियों का दू:स्वप्न

उपवन के मध्य में घनघोर बड़ी वेदी क्या बड़ा कुंड ही कहो उसमें मानो एक वन की सारी लकडियाँ काट-२ कर डाल दी गई थी, समिधा में सेकंडों घृतपात्र उड़ेले जा रहे थे । अग्नि की लपटें मानों आकाश को छूने में प्रतिस्पर्द्धा ही कर रही थी ।

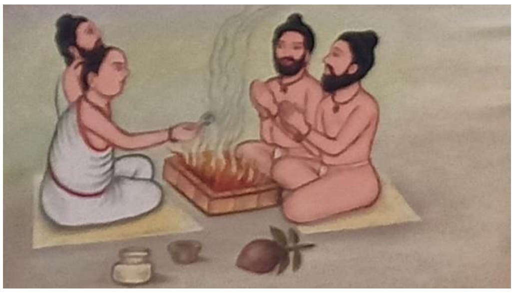

आकाश में चमकता हुआ सूर्य प्रचंड आग वरसा रहा था । याजक जोर-२ से वेदों-ऋचाओं का पाठ कर रहे थे । ऋषि मुनि वेद पाठ कर रहे थे । बड़ा ही उल्लास का वातावरण था मंत्री आज पूर्ण शोर्य के साथ निर्देश दे रहे थे ।

बाली – जोर से चीखा लाओ... सब से पहले इस श्रुत सागर को ही लाओ... इस ही ने मेरा जीना हराम किया था । अपमान... ओह... आज भी सिहर उठता हूँ...मैंने

कितना अपमान सहा...तंत्र मन्त्र के बल पर इसने हमें कील दिया था... बोल ! मरने चला आया न इधर ही...सारे संसार में तुझे और कहीं जगह न मिली... जो इधर ही चला आया...आ मर... इसे इस प्रचंड आग को भेंट करो... हा हा हा हा...चारों का अट्टहास सुनाई देने लगा...हे देवताओं आपने भले ही मेरा साथ न दिया हो...३३ करोड़ देवताओं... प्रसन्न होओं... लो अग्नि देवता अपनी हवि ग्रहण करके मुझे आशीर्वाद दो ।... इसे अग्नि में डाल दो...और देखते ही देखते पीछी कमंडल में लात मार कर ठुकरा दिया गया और २ सैनिक ने मुनि श्रुतसागर को हाथ पैर से पकड कर झुलाते हुए अग्नि कुंड में उछाल दिया । हा हा हा हा फिर अट्टहास गुंजा ।

अब इसके गुरु... इस अकम्पनाचार्य को पकड़ों... देखो कैसा निष्कंप बैठा है... मानो कुछ हुआ ही नहीं... हा हा हा हा... उन्हें भी अग्नि को समर्पित कर दिया गया चारों और बने कुंड में भी साधुओं को फेंका जा रहा था...चारों ओर मांस-देह जलने की दुर्गन्ध असह्य हो रही थी । तब ही एक साधू को फेकते ही एक जलती लकड़ी इस तरह आकाश में उछटी की उसके टुकड़े-२ होकर अंगारे समूह समागत खड़े मंत्रियों, उनके परिवारों, याजकों, ऋषि-मुनियों पर आ गिरे सब ही चीखने लगे... कोमल वस्त्र जलने लगे... पत्नी बच्चे... जलते कपड़ों में भागने लगे... मुकुट जमीन पर गिर गया...केश राशि धुधु कर जलने लगी...

नहीं...चीखता हुआ स्वप्न भंग हो गया ।

बाली बिस्तर पर उठ बैठा वह हाफ रहा था मध्य रात्री... सन्नाटा... प्यास...भय...घबराहट... कपाल पर स्वेद बिंदु... यह स्वप्न किस बात का संकेत दे रहा है ? ओह अब क्या करूं...यज्ञ तो अंतिम दशा में हैं...इसे कैसे रोकूँ...अरे ! अब क्या होगा...वह सारी रात सो न सका।

जिनशासन प्रभावना का दिवस श्रावण सुदी पूनम

आज श्रावण सुदी पूनम की प्रातः १ प्रहर बीत चला था...राजन पद्मराय की अनुपस्थिति, अज्ञानता एवं असमर्थता देखकर अन्य कोई उपाय शेष न रहा था। मुनि विष्णु कुमार ने रिद्धि बल से अपना रूप बौना वामन का बनाया और कर में वीणा लेकर हस्तिनापुर की राजबीथियों में भ्रमण करने लगे। उनके भजनों-गायन से श्रावकों को धीर आने लगा। वे श्रावक श्राविका उनके भजनों के साथ गुन-गुनाने लगे। धीरे-२ उनके पीछे आबाल वृद्ध नर नारी गायन नर्तन करने लगे।

अब सब यज्ञ स्थल पर आये और आचार्य संघ को नमोस्तु करके प्रसन्न होते हुए वीणा वादन करते हुए बाली के निकट आये जहाँ यज्ञ की अंतिम हवि विसर्जित होते ही नरमेघ यज्ञ प्रारम्भ होना था। सारे इंतजाम किये जा चुके थे...मन ही मन स्वप्नों में जिनकी अनेकों वार चिताएं जला चुका था वह उन्हें आज साक्षात जलते हुए देखने का अभिलाषी था।

इधर प्रातः से ही इंद्र देवता नाराज से दिख रहे थे, जिसे देख देख कर मन आशंकित था... रह रहकर तेज हवा चल रही थी... काले-२ मेघ मानो यज्ञ से नाराज होकर काले वस्त्र धारण करके आये हों। जहाँ तहां बिजली कोंध रही थी मानो वह कुपित ही हो रही हो, तब ही समाचार आया आंधी का एक झोका यज्ञ स्थल पर बने बल्लियों बांसों एवं घास से निर्मित अगासी आकाश में उड़ गई। अब क्या होगा ?...यज्ञ में विघ्न क्यूँ आ रहें हैं ?...हे प्रभु ! हे मन्त्र शक्ति !! हे आव्हानित देवताओं !!! आप हमारे इस यज्ञ की रक्षा करो।

चारों मंत्रि चिंतित भी थे फिर भी उनका क्रूर मन अत्यंत प्रसन्न हो रहा था...किसी तरह एक वार इन जैनों का सफाया हो जाए...(मुस्कुराया) भाल पर बड़ा सा त्रिपुंड लगाकर उत्तरीय वस्त्र धारण करके जैसे ही मस्तक पर मुकुट धारण करके बाहर आया... ब्राह्मण ने मंत्रोंच्चारण करते हुए आशीर्वाद देते हुए कंठ में सुगन्धित पुष्प हार पहनाया। बाली आदि चारों मंत्री के आज प्रसन्नता का पार नहीं था...चारों और उसके कृत्य की प्रसंशा करने वालों का समूह चल रहा था। जय जय कार से व्योम गूँज रहा था। रोमांचित होकर यज्ञ स्थल पर आये। बली वेदी को प्रणाम किया...पुरखों का स्मरण किया... आव्हानित देवताओं को स्मरण-प्रणाम किया।

समस्त जैनियों को उनके घर में ही कैद कर दिया गया... पद्मराय पर भी सख्त पाबंदी कर दी गई थी। निराबाध प्रबंध का अवलोकन करते हुए अति ही प्रसन्न थे।

अचानक यज्ञस्थल पर आया एक अद्भुत दृश्य...एक गौरा- नारा बौना-वामन छोटी सी पल्लव छत्री लिए सुंदर सुरीला गान करते हुए पधारे... कभी नाचते... कभी रिचाए गाते...कभी संगीत सुनाते... सारी प्रजा के आकर्षण के केंद्र बन गये। चलते-२ बाल रूप ने बाली को पकड़ ही तो लिया... हाथ छुड़ाना भारी पड़ गया...ऐसे नहीं छोडूंगा... दक्षिणा दिए बिना तेरा यज्ञ सफल होने वाला नहीं है... बाली आदि हसने लगे। बाली ने आदर से उन्हें अपने हाथों पर उठा लिया तो वे और छोटा रूप बनाकर हल्के हो गये... अरे ! बिलकुल ही भार नहीं है...दुसरे मंत्री ने हाथ पर लिया तो उनके हाथ जमीन को लग गये...अरे कितना भारी है देखो तो उठ ही नहीं रहे हैं...तीसरे ने सहारा देने की कौशिश की तो उनके दोनों कान पकड कर झूलने लगे... लोगों के हास्य का पार ही नहीं था चतुर्थ बृहस्पति ने उसे पकड़ने की कौशिश की तो उसके कंधे पर चढ़ गये...सर पर तबला बजाने लगे...हास्य के वातावरन में बाली आदि उसका उपहास करने लगे... वाह रे छोटू !...कितना कौतुक कर रहा है ? (हसते -२) क्यूँ कर रहे हो ? यह समय धर्म के गंभीर कर्मकाण्ड का है... समझो तो...अरे मान जाओ...शान्ति रखो न...ओह क्या मेरे यज्ञ से प्रसन्न होकर आपको स्वर्ग से स्वयं ब्रह्मा जी ने भेजा है अहा ! मैं तो धन्य हो गया...मैंने जैन धर्म का नामो निशाँ मिटाने का बड़ा कार्य किया है... अवश्य ही स्वर्गस्थ देवताओं ने मुझे आशीर्वाद दिया है। बतलाओ मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ ?... आप प्रसन्न हूजिये... मैं इस समय तीन लोक का राज्य भी दान कर सकता हूँ।

अवश्य -२ राजन!...मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए... संतोष ही ब्राहण का धन है, तृष्णा एवं लालसा कलंक है और स्व पर का कल्याण करना ही कर्तव्य। और... अपना रूप अचानक बढ़ाना शुरू कर दिया... अरे... यह क्या... यह कौन है... नर-नारी चोकने लगे...अरे आज वह क्या देख रहें हैं... सारे लोग एक टक अब मात्र एक ओर ही देख रहे थे...रूप बढना नहीं रुक रहा था...बाली आदि भयभीत हो गये...क्या यह मेरे से रुष्ट हो गये हैं...अरे! मैंने इसका उपहास क्यूँ किया ?...अब क्या होगा ? हाय यह तो साक्षात् विष्णु भगवान ही तो नहीं आये हैं ?...उन्हें अपने पापों का भय सताने लगा... मैंने क्या बुरा किया है ?...हे भगवान ! आप जो भी हैं...मुझे क्षमा करें...मैं अपने जीवन में धर्म विरुद्ध कुछ भी न करूंगा...आप मुझे निर्देशित कीजिएगा।

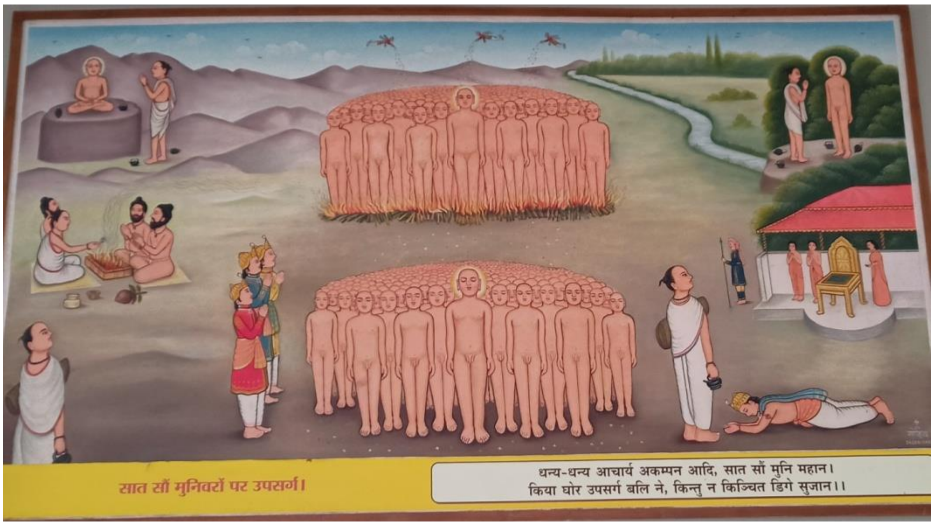

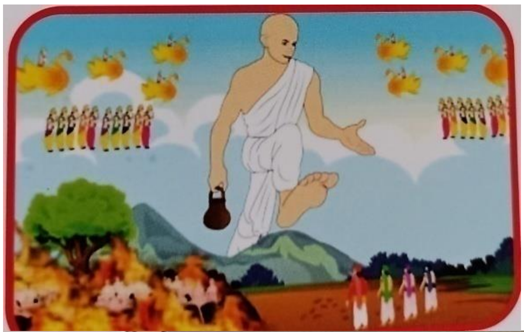

विराट रूप में नमस्कार

बिशाल रूप देखते ही चरणों में चारों गिर पड़े... क्षमा याचना करने लगे...तो सुन ! बाली !! यज्ञ में हिंसा करना पाप है...कोई तुझे इस पाप से बचाने वाला याजक - विद्वान पंडित हो तो आकर तुझे दुखों से बचा ले...आगे आये, कोई है बचाने वाला !...सारे ब्राह्मण थर-२ काँपने लगे... अहिंसा से ही तेरा यज्ञ सफल हो सकता है... सारे पशुओं मनुष्यों को तत्काल मुक्त कर या पापों की सजा भुगतने को तैयार रह...कोई बचाने को तैयार हो तो सामने आये !....सब असहाय... आखिरकार मंत्रियों ने क्षमा मांगकर समस्त सारे मुनिराजों को प्रणाम करके मुक्त कर दिया...मुनि विष्णु कुमार की रिद्धि अतिशय देखकर चारों मंत्रियों ने दिगम्बर मुनियों के तप अतिशय को जाना और नत मस्तक हो गये। वे स्तवन करने लगे -

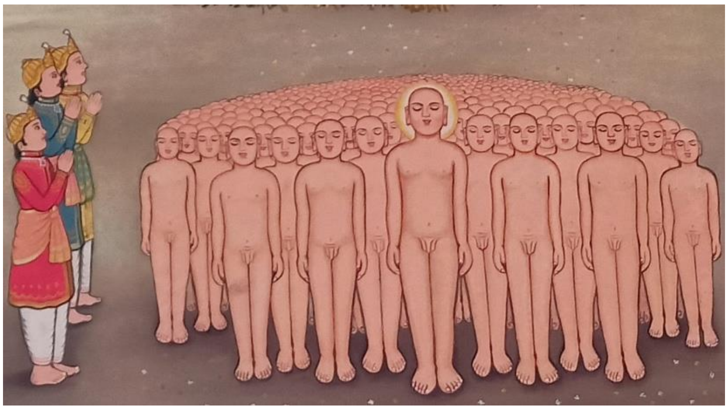

सभी मुनिराजों से क्षमापना कराते मंत्री

यह तो आर्ष परम्परा के सुदृढ़ महास्तम्भ, महातपोनिधि, सिद्धों के प्रतिबिम्ब, चलते फिरते सिद्धों सम होते हैं स्वरूप वाटिका में आत्मस्थ स्वरूप सौन्दर्य के दर्शन संवेदन से जिन्हें एक पल को भी विराम नहीं मिलता हो जिनकी सुधारस झरती वाणी से विभावों की वस्ती उजडती हो और उजड़ी वस्ती अत्तिन्द्रिय आनंद की वस्ती वसती है । दिगम्बर जैन संस्कृति के शिखामणि समान है जिनका मूल्य जग के सम्पूर्ण हीरे मोतियों से भी नहीं हो सकता है ।

उपसर्ग काल में मेरु समान निष्कम्प आर्त-रौद्र भाव से कहीं दूर क्षमा के भंडार, मुक्ति के मूर्तिमान पूज्य वन्दनीय आदर्श होते हैं ।

अहो मुनि संघ में १३ बाल मुनि, १३२ किशोर मुनि, २७८ युवा मुनि, ८७ प्रौढ़ मुनि, २४६ रोगी एवं वृद्ध मुनि थे इनमे से अनेकों दिवसों के अन्तराय, क्षुधा तृषा, ज्वर, कफ, पित्त पीड़ित नाना दशाओं वाले मुनिराज थे परन्तु सबके चित स्थिर थे ।

पुनीत सागर ९ वर्षीय सबसे छोटे वय के मुनि थे उन्हें निर्भीक देखकर अन्य साधुओं को भी बल मिल रहा था । परन्तु एक १३ वर्षीय मुनि विनीत सागर ने उनसे पूछा क्या उन्हें भय नहीं लग रहा है ?

भय कैसा ?...

परिणाम बिगड़ गये तो ?

अन्य बाल मुनि भी एकत्रित हो गये

अरे आप... ! पारिणामिक भाव में परिणाम बिगड़ने का भय कैसा !!

देह जलने पर उसमें कष्ट तो होगा... तब देहाश्रित उपयोग...परिणाम बिगड़ना नहीं है क्या ?

ततसमय की योग्यता में जो हो सो हो... मैं तो मात्र परिपूर्ण प्रभु हूँ... आनन्द से भरे पुनीत बोले ।

एक किशोर वय के मुनि बोले – न जाने कितने भव बाकी हैं...

पुनीत बोले – अरे ! पारिणामिक भाव में भव कहाँ और मुक्ति की भी कमी कहाँ ?

व्यवहार के स्थान पर व्यवहार का ध्यान रखना चाहिए - चेताते हुए एक मुनि बोले ।

किन्तु पारिणामिक भाव के बिना व्यवहार ही नाम नहीं पाता है।

भव बिगड़ने पर क्या होगा...मुझे तो बहुत पुरुषार्थ करना बाकी था...परन्तु इस उपसर्ग में शायद ही जीबित बचूं... उदास स्वर में विनीत बोले

पुरुषार्थी के भव बिगड़ते भी नहीं और बढ़ते भी नहीं। पर्याय की स्वतन्त्रता एवं ध्रुव की पूर्णता स्वीकार करते ही सम्पूर्ण पुरुषार्थ हो जाता है। देह अभी जाय या कभी; हमें क्या !... आनन्द पूर्वक बोले पुनीत।

एक किशोर मुनि बोले...आग लगेगी...लपटें उठेंगी... धुँआ उठेगा... वाणी एवं आँखों में भय साफ़ झलक रहा था।

जहाँ देह अपनी नहीं तहां... अन्य चिंता कैसी!... अबद्ध अस्पृष्ट आत्मा जले कैसे... अग्नि ने अनादि काल से आत्मा को स्पर्श ही नहीं किया है; तो आज कैसे कर लेगी ! श्रवण करते ही शांत एवं वीर रस से भर गये सब मुनिराज।

क्या अपन यहाँ से कहीं जाकर अपने प्राण नहीं बचा सकते हैं ? कातर स्वर सुनाई दिया

आचार्य आज्ञा बिना हम क्या कर सकते हैं ? उदास मजबूर स्वर गूँजा

आचार्य भी क्या करें... वे तो आगम आज्ञा से बंधे हैं...चातुर्मास काल में कहीं जाने का तो प्रश्न भी नहीं है। और उपसर्ग काल में तो जाने के बारे में सोचना कायरता है नपुंसकता है।

उपाध्याय विनम्र सागर बोले - कर्मोदय से भागने की व्यवस्था नहीं है... स्वरूप में समाने की व्यवस्था तो है; क्यों न स्वरूप का चिंतन-निर्णय करके निर्विकल्प हों।

इतने भयभीत क्यूँ हो रहे हो... असाता से ज्यादा क्या हो सकता है...आयु से पहले देह नहीं छूटती है...देह के परिणमन से मेरा क्या बनता बिगड़ता है ?

हम तो इस देह को त्याग कर के ही घर से निकले थे... अब इसकी प्रीति कैसी ?...अरे ! इसकी प्रीती ही मोह है; और यही भाव बिगड़ना है।

भाव सुधारने का प्रयत्न ही भाव बिगाड़ रहा है।...सभी प्रसन्न हुए... वातावरण हल्का हुआ।

मनुष्य भव बेकार ही चला जाएगा। एक आशंकित स्वर सामने आया

पारिणामिक भाव की अनन्यता देखने से ही यह भव सार्थक हो गया है। हर भव में पारिणामिक भाव सदा सुरक्षित अप्रभावी रहा है।

प्रमाण, नय, निक्षेप, गुण- शक्ति भेद, कितना कुछ पढ़ना बाकी रह गया। गुनस्थान, न्याय शास्त्र ओह! अब कब पढने को मिलेंगें ?

सारी विशेषताएं अविशेष की प्रसिद्धि में ही सार्थक होते हैं। जब पारिणामिक भाव को अविशेष अनुभव कर लिया तो सारा विशेष स्वतः ही जानने में आ गया।

"मेरी बिशुद्धि एवं क्षयोपशम कम है... आप सब तो विशेष प्रज्ञा के धनी हो आपका कल्याण तो अवश्य हो जाएगा... मेरा क्या होगा ?" हताश कुंठित स्वर सामने आया।

अरे पारिणामिक भाव सदा नियत भाव वाला है... इन घटने बढ़ने वाले भावों में भी मैं तो सदा नियत भाव वाला हूँ; वहीं अनुभवने लायक है।

उपाध्याय का वात्सल्य मयी आदेश हुआ - चलो सब ही अपने नियत स्थान पर जाकर ध्यानस्थ हो जाओ...

उपसर्ग काल में भूख-प्यास कुछ भी नहीं दिखती है।

उपसर्ग प्रारम्भ हुआ...गहरा धुँआ उठा...श्वासें रुकने लगी...खांसी चलने लगी...बेहोशी छाने लगी। अमर आत्मा को कुछ भी फर्क नहीं पड़ा। चिंता करने को अवसर भी नहीं मिला। तब ही वरसा ने उपकार किया अग्नि शांत होने लगी... गर्म भाप... धुँआ मिश्रित रूप से कष्ट में राहत दे रही थी।

किन्हीं मुनिराज के हाथ पाँव जल गये थे, किन्हीं मुनिराज की केशराशि जल रही थी, किन्हीं मुनिराज की पीठ, किन्हीं मुनिराज के नितम्ब जल रहे थे। किन्हीं मुनिराज के घायल झुलसी देह जमीन पर पड़ी हुई थी। किन्हीं मुनिराज का धुँआ से दम घुट रहा था।

मुनिराजों को शुक्ल ध्यान-आत्म ध्यान के फल में केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, आदि अनेकों रिद्धियों की प्राप्ति होने लगी।

उपसर्ग काल में भी ७०० मुनिराजों के भेद विज्ञान दशा में धैर्य बना हुआ था... वह धन्य-पूज्य था।

"रे कर्म अपने ठाठ तू दिखाता है किसे ?

प्रतिकूलताओं का भी भय दिखाता है किसे ??

निरपेक्ष ज्ञाता रूप हूँ, ज्ञाता ही रहूँगा ॥"

लोकेषणा, लोक भय, लोक की चिंता, लोकमति, लोकसंग से हमारे लोक का अंत आने वाला नहीं हैं ऐसा जानकर निज चैतन्य लोक में स्थिर होने वाले संतों ने बाह्य परिस्थिति विपत्ति की चिंता नहीं की क्योंकि स्वरूप सीमा पर स्वरूप मर्यादा का वज्र किला है जिस में इन सबका प्रवेश वर्जित है।

'निज प्रदेशत्व रूपी किला है, जो कभी न किसी से भिदा है।

कर्म रागादी भी रहते बाहर, पेठ पायें कदापि न अंदर ॥

अन्तरंग में सदा अविकारी आज अद्भुत छवि निज निहारी ॥'

निर्भय सिंहवत स्वरूप गुफा में थिर होकर केवलज्ञान पाया।

आत्म साधकों के अंतर्लोक की सुन्दरता भी कम दर्शनीय नहीं है... .भावी सिद्धों के टोले मानो स्थिरता में प्रतियोगिता कर रहें हों... अंतर में मोह क्षीण हो रहा था...देह में उपयोग मानो आता ही न हो वाह ! क्या स्थिरता !! वाह ! क्या श्रद्धा-आत्म विश्वास, आयु कर्म एवं असाता-साता का अद्भुत विश्वास !!! वाह ! २ द्रव्यों एवं २ पर्यायों की अत्यंत स्वतन्त्रता का गाढ़ विश्वास !!!! अहा ! बाली आदि के प्रति किंचित मात्र भी रोष नहीं !!!!! अहो इनकी पूज्यता शत इन्द्रों में क्यों न होगी ! देह जाय पर माया न होती रोम में।

अहो ऐसे घोर उपसर्ग में भी शांत रस – परम शांत रस अहा ध्यान में अतीन्द्रिय आनंद का आस्वादन करते हुए कितने ही मुनिराज रिद्धि सिद्धि को प्राप्त हो गये। ३-४ मुनिराज वहां बेहोश दशा में भी पद्मासन में ही विराजे थे... ९ वृद्ध एवं रोगी मुनिराज समता भाव से देह विसर्जन कर स्वर्गस्थ हो गये। जिनमें से एक मुनिराज निर्वाण को प्राप्त हो गये।

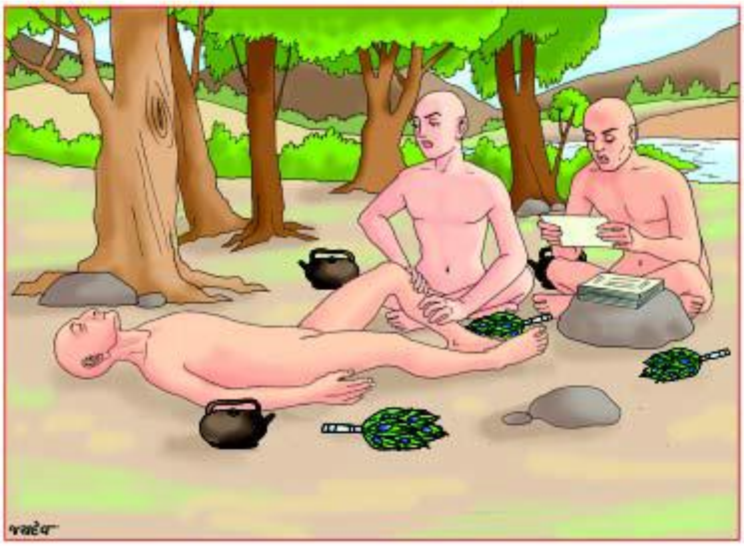

अहो बाल रूप में दिखने बाले पुनीत सागरजी भी थे उन्होंने सल्लेखना समाधि को सार्थक कर लिया था। उन्हें केवलज्ञान हो गया। उपसर्ग केवली के रूप में प्रसिद्ध हो गये। उनकी गन्धकुटी लगाई गई। इंद्र-देव गण उनके मोक्ष गमन का उत्सव मना रहे थे। आचार्य अकम्पन एवं विष्णुकुमार सहित सारे स्वस्थ साधू उन्हें पीछी उठा-उठा कर त्रय आवृति पूर्वक शिरोनती कर रहे थे।

दिव्यध्वनी गूंजी... गृहीत मिथ्यात्व का अंत हुआ... अग्रुहीत मिथ्यात्व आत्म महिमा देखने से पलायन कर गया...आत्म वैभव देखकर कितने ही अनुव्रती, महाव्रती हुए...

दिव्यध्वनि सुनकर चारों मंत्री अपने मन में विचारने लगे आत्मा की निर्ग्रन्थता अर्थात जिन दीक्षा धारण करने वाले को सब सुख प्राप्त होते हैं। जैसे भूमि की निर्ग्रन्थता किसान को, आकाश की निर्ग्रन्थता उत्सव को, पानी की निर्ग्रन्थता से तृषाभाव रूप तृप्तिको, जठराग्नि की निर्ग्रन्थता से आहार पाचन का, चावल की निर्ग्रन्थता से पाक-स्वाद में सूर्य की निर्ग्रन्थता से दिन शुद्धि का, चन्द्रमा की निर्ग्रन्थता से रात्री शुद्धि का, मन की निर्ग्रन्थता से कार्य सिद्धि का, रत्न की निर्ग्रन्थता से मूल्याधिकता का, स्वर्ण की निर्ग्रन्थता से आभूषण का आनन्द होता है।

इसी प्रकार मनुष्य के निर्ग्रंथ होने से सभी अभीष्ट कार्यों की सिद्धि होती है। अर्हन्त भगवान का उपदेश निर्ग्रंथ धर्म है, इसमें किसी भी प्रकार का छल – कपट या भेदभाव नहीं हैं, अतः आत्मोद्धारक सर्वोदयी है जैन धर्म।

उनके साथ-२ अनेकों ब्राह्मण भी जैन धर्मानुयायी एवं निर्ग्रन्थ होकर अपने जीवन को धन्य कर रहे थे।

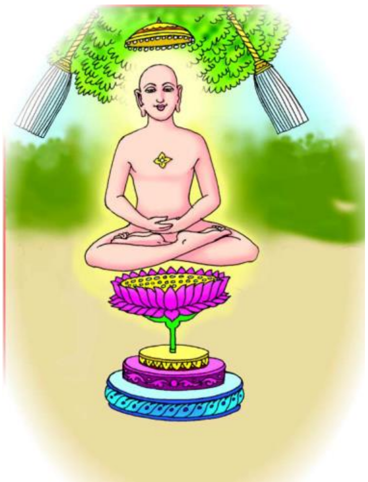

केवली के मुखारविंद से मंत्री, नागरिकों एवं ब्राह्मणों ने देशना सुनकर विरक्त होकर जिनमार्ग ही सच्चा मार्ग है जानकर दिग्म्वर दीक्षा लेकर अपनी भूलों का प्रायश्चित्त किया। अपने अपराधों का इससे सुंदर प्रायश्चित्त क्या हो सकता है ! जो अनादी का मिथ्यात्व छोड़कर भावि सिद्धों के परिवार में शामिल हो गये।

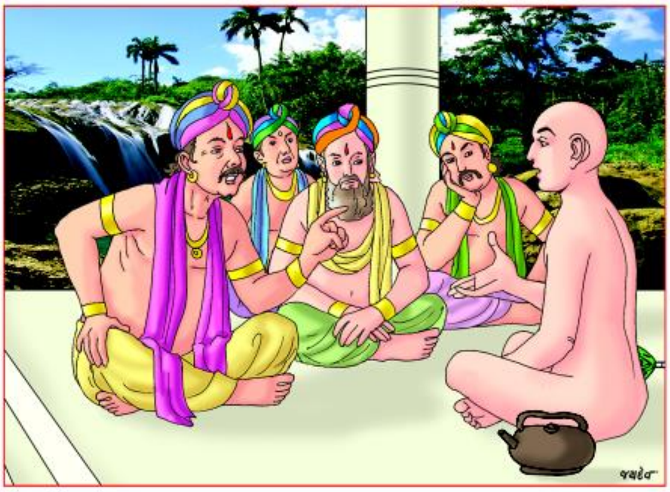

उन्होंने दीक्षा लेकर घायल साधुओं की वैयावृत्ति की। इधर विष्णु कुमार मुनि ने भी प्रायश्चित्त लेकर पुनः मुनि दीक्षा ली। उन्होंने केवली, सर्व संघ सहित नव दीक्षित मंत्री मुनियों को भी प्रणाम किया। वाह रे योग्य विनय भाव उन मन्त्रियों के मुनि बनने पर भी उनसे लघुता स्वीकार करने में कोई मान नहीं।

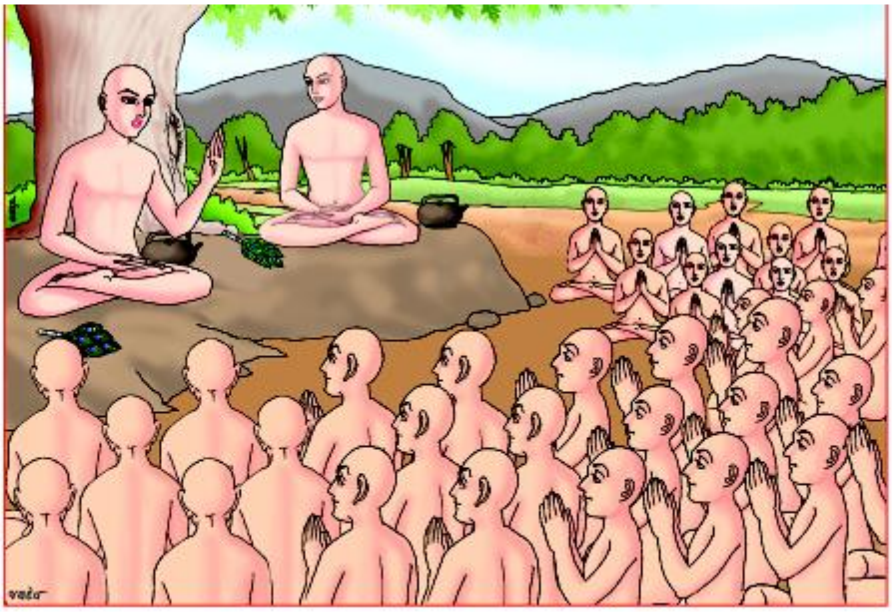

एक भारी दीक्षा महोत्सव हुआ।सभी ने अपनी-२ योग्यतानुसार दीक्षा लेकर तप करके किन्ही ने सम्पूर्ण कर्ममल को धोया और मोक्ष को अल्प काल में पा लिया। कितनों ने स्वर्ग, कितनों ने भोग-भूमि का पुन्य संचय किया। अंत में तो सब सिद्धालय में मिलेंगें ही। सम्पूर्ण देश में जैन धर्म की अद्भुत प्रभावना हुई।

इस समय देश में सर्वत्र शान्ति ही व्याप्त हो गई। राजा पद्मराय सोचते रह गये धन्य है आ. अकम्पन की अक्म्पता ! अवधि ज्ञान में जानते हुए भी इस नगरी में पधारे वाह री करुना इन सब जीवों का हित जो होना था। मंत्री जैसे दुष्ट परिणामी जीवों पर भी इतनी करुना... उन्हें भी अपने भावि सिद्धों के परिवार में शामिल कर लिया। पामर को भी भगवान बना लिया इससे सुंदर विश्व में कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं हो सकता है।

कुछ मुनियों की असाता देखकर किन्ही मुनियों की आयु की पूर्णता हुई उनके प्रति भी सहजता, जिनका मोक्ष हो गया, जिनको केवलज्ञान हो गया और अंत में इतने सारे नर नारियों की दीक्षा एक साथ विविध दृश्य देखकर भी समभाव। इससे सुंदर आराधना क्या होगी ! और इनसे प्रभावना हुई सो अचम्भा नहीं है।

पद्मराय मन में सोच रहे थे – "मैं भी शीघ्र ही जिन दीक्षा लेकर अपना भव सार्थक करूंगा। अभी तो भवितव्य के ऋण को सहज भाव से स्वीकार करके राज्य करता हूँ।"

आहारचर्या एवं परिचर्या

श्रावकों में ख़ुशी की लहर व्याप्त हो गई...सारे श्रावक दौड़-२ कर मुनिराजों का उपचार करने लगे...बच्चे यज्ञ स्थल पर बौये गये जवारे उखाड़-२ कर नगर में भागने लगे ताकी लोगों को उनकी बातों का भरोसा आ सके, साथ में लाये हुए जवारे दूसरों को भी दे रहें थे ताकी यह समाचार विश्वसनीयता के साथ द्रुत गति से सारे देश में पहुँच जाएँ। वे दौड़-२ कर भुजरियाँ उखाड़ कर नगर में दौड़ लगा रहे थे वे मुनि विष्णु कुमार की जय...अकम्पनाचार्य आदि संघस्थ समस्त मुनिराजों की जय जयकार से व्योम गुंजाने लगे... जो महिलायें, वृद्ध और रोगी लोग घर से बाहर निकलने में असमर्थ थे वे यहीं से निर्जल उपवास करके नमोकार मन्त्र का स्मरण करके भावना भा रहें थे; सुनते ही उनकी आँखों से हर्ष-नीर वह निकला था। उन्होंने बच्चों को स्वर्ण आभूषण, मुद्राएँ, मिठाइयां खिलाकर पुरुष्कृत किया। बच्चे बड़ों के पाँव छू-२ कर खुश खबरी दे रहे थे। आज तो नगर में मानो मात्र बच्चों की नदी ही बह रही थी। अंत में हिन्दुओं द्वारा यज्ञ स्थल की सफाई हुई सारे जवारे नदी में क्षेपित कर दिए गये।

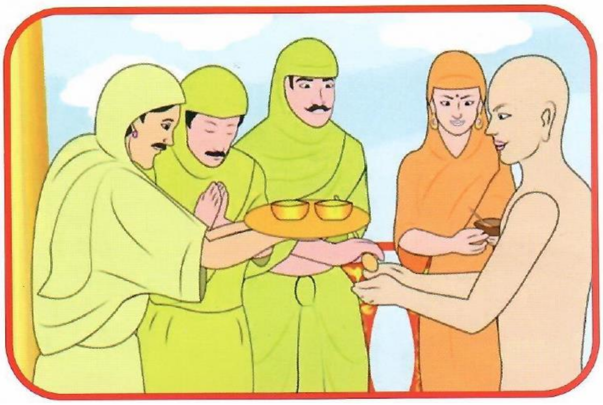

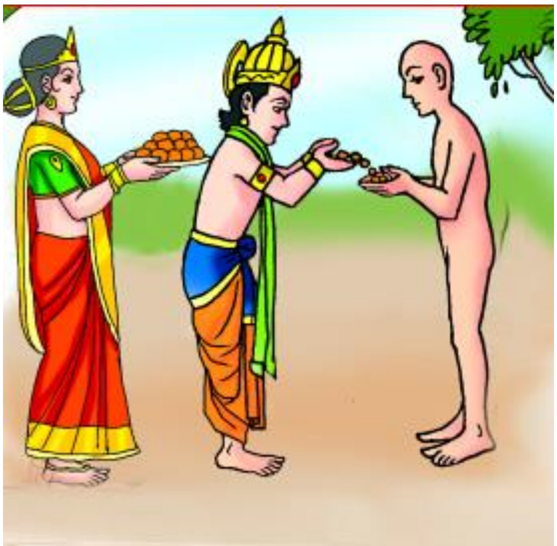

२ प्रहर ही तो बीता था... घर-२ आहार का प्रबंध होने में क्या देर लगनी थी... कठिन आहार चर्या आज भी अलि वृत्ति, गोचरी वृत्ति से हुई... किसी ने घूंट-२ घूंट जल अथवा मात्र दुग्ध आदि लिया और किसीने ग्रास दो ग्रास चावल साग अथवा दलिया की खीर ली। शेष ने गर्म जल पर्याप्त मात्रा में पिया। ७ दिन के उपासे कंठ में पित्त बाधा से बचाने के लिए मात्र रोटियों को भिगोकर उनका पानी छानकर भोजन में दिया गया। कुछ मुनि भगवंतों को चावल का मांड, सोंप धने का पानी, आंवला गुड को गर्म जल में भिगोकर उसका पानी दिया।

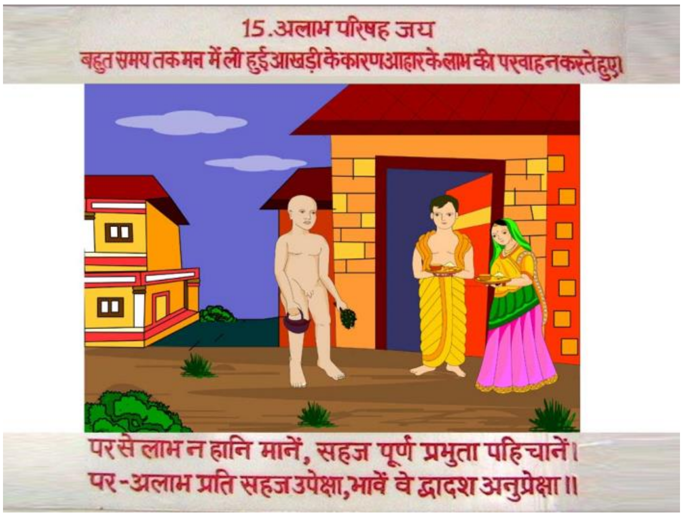

कुछ मुनिराजों को अन्तराय आने से एवं विधि न मिलने से अलाभ परिषह जीतने का अवसर मिला। वे तब भी स्वयं को देह न मानने से आनन्द पूर्वक सविपाक निर्जरा करके भी भोजन में अन्तराय हुआ होगा वे तो निरंतराय चिदानंद रस का पान कर रहे थे।

"अंतराय में उत्सव उनके होता, जिनके निरन्तराय भेद्ज्ञान होता।"

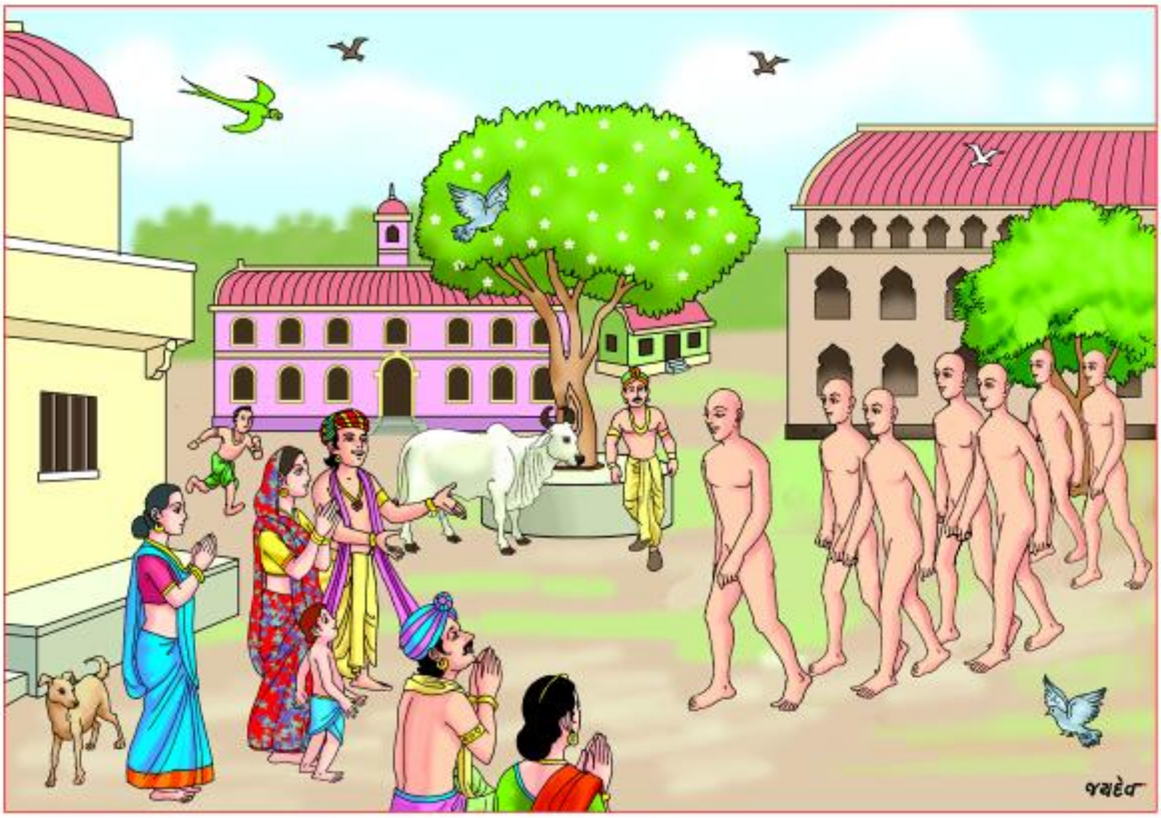

अनेकों साधुओं के उपचार में पक्ष दो पक्ष लग गये, श्रावकों ने उनकी भक्ति से वैयावृत्ति की।

पद्मराय की पीड़ा

पद्मराय के लोटने पर सारे धर्मद्रोही समाज द्रोही विप्लवकारी समाचार सुनकर अत्यंत दुखित हुए। विश्वासघात से ठगाए गये अपने को अपमानित दोषित घृणित अनुभव रहे थे। वे विष्णु कुमार के चरणों में गिरे तो उठ ही नहीं पा रहे थे। अविरल अश्रु प्रवाह वातावरण को बोझिल बना रहा था। उनको मन में वर देने का अत्यंत दुःख हो रहा था; वे बिलख उठे।

हाय मैंने कैसे नादानी में वचन दे दिया ? धिक्कार है मुझे... सच है प्रभाव परीक्षा नहीं करने देती... अब मैं क्या करूं ? कुछ समझ में नहीं आता है ? ७ दिन से पहले मैं राज्य पाने में असमर्थ हूँ... अब तो आप ही सुयुक्ति से मेरा कलंक दूर कीजिये। मेरा कष्ट दूर कीजिए... सच है सम्पत्ति में विपत्ति वसे... अब मैं भी इस संकट से निकलने के बाद आत्म हित ही करूंगा।

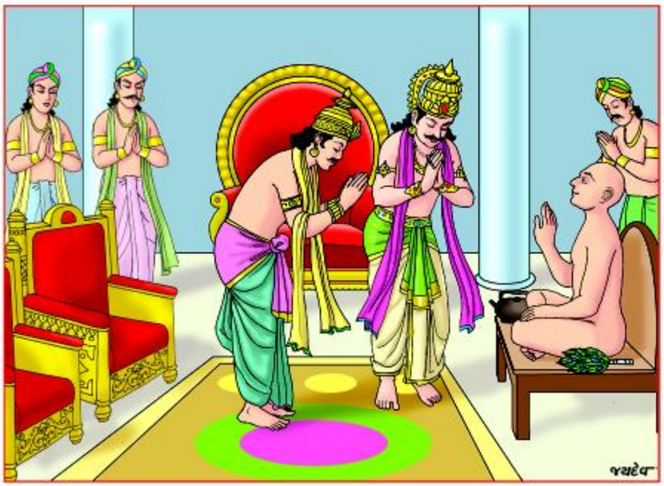

विष्णु कुमार – (स्मित वदन समझाते हुए) व्यर्थ खेद से कोई लाभ नहीं। होने योग्य ही होता है। हाँ इतिहास से शिक्षा लेकर उसे भुला देना ही पुरुषार्थ है। प्रसन्न होने पर जो भी पारितोषिक देना हो तत्काल देना चाहिए अथवा तो भाषा की मर्यादा

में देना चाहिए अनुवीची भाषण इस ही समय हमारी रक्षा करता है। न्याय नीति की मर्यादा प्रमाण वर देने से कभी जोखिम नहीं होती है।

असीमित अधिकार कभी भी किसी को भी देने योग्य नहीं होते हैं। राज्य, धर्म, प्रजा एवं मानव के हित के विरुद्ध तो राजा को भी अपनी प्रजा एवं सेना से भी समर्थन प्राप्त नहीं होता है।

वर पूर्ति के पीछे यदि सांप्रदायिक विद्वेष, अनैतिक, अश्लील उद्देश्य निहित हो तो वह वचन उल्लंघन करने पर भी पाप नहीं होता है। अतः राजा को तत्काल अपने हाथ में सत्ता ले लेना चाहिए।

वर देने का पश्चाताप – वर देने की घटनाओं से तुलनात्मक अध्ययन करने योग्य है। दशरथ ने केकई को वर दिया और रामायण की रचना हो गई, भीष्म के पिता शांतनु ने धीवर कन्या को वर दिया और उसके पुत्र को राज्य देना भारी पड़ गया। उपश्रेणिक ने भी कन्या के पिता को वचन दिया और श्रेणिक को राज्य न देकर अयोग्य पुत्र को राज्य न चाहकर भी देना पड़ा। इस तरह जब-२ वर दिया गया तब -२ वरदाता को संकट उत्पन्न हुआ। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने भी पत्नी पुत्र सहित संकट उठाया। कंश को वर दिया था वसुदेव ने और प्रत्येक प्रसूति मथुरा में कराने का वर माँगा। आगा पीछा सोचे बिना उन्होंने वर देकर पछताया।

जो देना है तत्काल प्रसन्न होकर दे दो परन्तु वचन मत दो।

विष्णु कुमार का प्रायश्चित्त एवं मोक्ष गमन

विष्णु कुमार ने आचार्यश्री सागरचन्द्र के चरणों में उपरोक्त वात्सल्य विकल्प का भी प्रायश्चित्त लिया। उन्होंने अपने को इस दिक्षा से पूर्व हुए

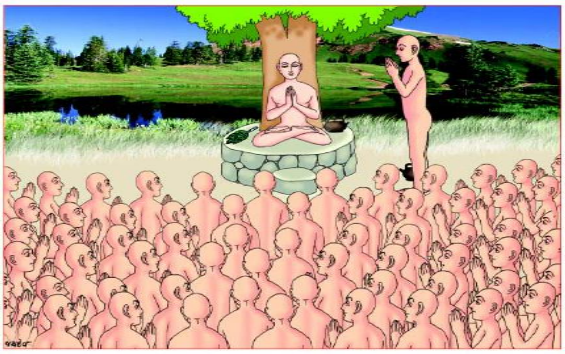

समस्त मुनिराजों को सारे जीवन प्रणाम किया एवं उनके बाद ही आहार चर्या के लिए निकलते रहे। सारा जगत पुनर्दिक्षा समय भी उनकी जय जयकार कर रही थी और वे अपने स्वभाव में मग्न थे। बचाने वाला मैं

कैसे हो सकता हूँ। जिन शासन प्रभावना का योग में मेरा नाम भर जुड़ा है और वह मैं हूँ भी कहाँ ! मैं तो साक्षात आनन्द मूर्ति शाश्वत महा प्रभु हूँ। उसे कोई अन्य कैसे जान सकता है !!

धन्य है शिष्य की शिष्यता है कि, गुरु आज्ञा में डेढ़ अकल नहीं लगाते... "श्रद्धा है गुरु की तो सम्पूर्ण समर्पण कर दिया अर्थात उनकी आज्ञा प्रायश्चित में, ग्रन्थ के तर्क नहीं लगाते हैं"... अहा ! शुद्धोपयोग... गुरु ने कहा है कि ७०० मुनिराजों की रक्षा करो... तो करना ही है... गुणस्थान गिरने से मेरा क्या गिर जाएगा... मैं तो सदा नियत भाव हूँ... वस्त्र धार लिए... वीणा बजाने लगे... एक दिन ऐसा ही सही... कौतुक पुण्य एवं प्रभुता का दुरुपयोग स्वयं की ख्याति लाभ पूजा भोजन आदि के लिए नहीं किया हैं गुरु आज्ञा से किया वह भी श्रीसंघ की रक्षणार्थ...

बाद में दीनता भी नहीं अनुभवी... संयम से जो बड़े हैं... उन्हें मेरा आजीवन नमोस्तु... चार मंत्री ने मेरे प्रायश्चित्त से पहले ही दीक्षा ले ली... अहा ! धन्य है भावी सिद्ध... आपको मेरा नमोस्तु... प्रायश्चित्त में आनाकानी नहीं... मैं तो नहीं चाह रहा था आपके कहने से किया है...तो आपको भी तो कारित का दोष लगा... एक कोटि टूटी तो नव कोटि टूटने का पाप होता है फिर तो आप भी प्रायश्चित लो... आग्मानुसार तो कोई मुनि को दुसरे मुनि की रक्षा करना नहीं कल्पता है। सब अपने नियत कर्मों का फल भोगते हैं ..निर्जरा करते हैं... तप करते हैं तप का फल पाते हैं... इसमें मुझे तो कोई विकल्प न था... मैं तो अपने में निमग्न रह रहा था... अरे नियत कार्य नियत समय पर नियत निमित्तों की सन्निधि में हुआ इसमें क्या अचम्भा... किसी का क्या दोष... मेरे में न पहले कमी आई न अब... सबको नमोस्तु करते हुए पुनः दीक्षा ली।

अहा वस्तु स्वरूप की स्वतन्त्रता, अहो अकर्ता स्वभाव का आनन्द, जगत का व्यवहार तो अज्ञान प्रमाण ही होता है, आज जो कुछ भी हुआ है वह मेरे से अति ही न्यारा है; इस देह के परमाणु तक मेरी इच्छानुसार नहीं परिनमते मेरे स्वयं के परिणाम भी मेरी इच्छानुसार अथवा ज्ञान-प्रतिभा अनुसार नहीं बदलते तो अन्य प्रभावना चमत्कार की कौन कथा ! विश्व वन्द्य होते हुए भी वे वन्द्य वन्द्यक भाव से परे थे। स्वरूप निमग्न दशा में केवलज्ञान पाकर दिव्य ध्वनी द्वारा मोक्षमार्ग दरसाते हुए योग निरोध करके अंत में कैलाश पर्वत से शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति की।

आज भी सारे देश में भुजरियों के देने लेने का रिवाज है बालकों को लोग पैसे देते हैं फिर १-२ दिन बाद विसर्जन किया जाता है उपसर्ग दूर होने पर लोगों को विश्वास नहीं होता था तो लोग यज्ञ स्थल पर बोये गये जवारे लेकर उखाड़- २ कर प्रतीक के रूप में समाज में दिखाने लगे तो लोग हर्ष से उन्हें धन आदि पुरूस्कार देते थे।

आचार्य के दृढ़ अनुशासन प्रशासन के दर्शन होते हैं। मुनिराजों, श्रावकों, धर्म प्रभावना की रक्षा के लिए किंचित मात्र भी भावुक न होकर योग्यतम शिष्य को भी योग्य प्रायश्चित्त दिया। अहो मोक्षमार्ग में दीक्षा, शिक्षा, पालन, वैयावृति, समाधि कराना, योग्य संरक्षण देना ही तो गुरुओं की गुरुता है।

सागरचन्द्र आचार्य ने भी स्वयं आदेश देकर मुनिराजों की रक्षा कराई और स्वयं एवं विष्णु कुमार मुनिराज को भी प्रायश्चित विधि से शुद्ध किया।

अकम्पनाचार्य आदि सप्त शताधिक मुनिराजों की साधना-धैर्य धन्य है। श्रुत सागर एवं विष्णु कुमार मुनिराज का प्रायश्चित एवं वात्सल्य भी धन्य है।

शिष्य की शिष्यता-आज्ञाकारिता भी अद्भुत दर्शनीय-पूज्यनीय है,

अहो ! सप्त शताधिक मुनिराजों की विनय, साक्षात् मृत्यु दिखने पर भी अमर आत्मा का वेदन करना आश्चर्यकारी नहीं है, जब देह में ममत्व है ही नहीं तो उसके खोने का भय कैसा, दूरदृष्टा उत्सर्ग अपवाद मार्ग की मैत्री के सफल ज्ञाता सागरचन्द्र आचार्य, आज्ञाकारी क्षु. पुष्पदन्त जिन्होंने अपनी ढेढ़ अकल नहीं लगाई, कुतर्क नहीं किया, अपनी विद्याओं का जिन शासन सेवा में सदुपयोग किया, अहो श्रुतसागर जिनसे चूक तो हुई परन्तु अपने को अकर्ता अनुभवने पर भी संघ के प्रति दायित्व अनुभवते हुए एकांत श्मसान में जाकर कायोत्सर्ग तप किया और शूरवीरता पूर्वक इच्छा निरोध किया, निर्भय मुनिराज को कोई देव रक्षा करें, कोई मन्त्र सिद्ध करें, मृत्यु भय आकस्मिक भय, यह भव परभाव का भय नहीं होता है आपको भी नहीं था। धन्य है विष्णु कुमार महा मुनिराज जिनके निमित्त से वात्सल्य पर्व चल गया और जिन्होंने प्रायश्चित कर मोक्ष पाया। शिष्यता का पालन न होने से संकट का जन्म होता ही है। राह चलते यदि मंत्रियों से वार्ता न होती तो शायद इतना बड़ा संकट न आया होता। लोग तो यही कहेंगें।

जहाँ मूर्ख राजा या मंत्री मिथ्याधर्म का प्रचारक हो उस देश में देश काल के ज्ञाता को मौन रखना ही आभूषण है। इस सामान्य से नियम को मैं कैसे भूल गया ? देखो भवितव्य ! जीवन में एक भूल ही इतनी भारी पड़ जाती है। अथवा तो नाना जीवों के पापोदय, निर्जरा, मोक्ष का निमित्त एक साथ आने पर मैं तो मात्र निमित्त बना हूँ, अतः निर्दोष हूँ। अनेकों जीवों ने पुन्य बंध किया, मात्र पाप बंध ही तो नहीं किया है और जिनने किया है वे भी तो अकर्ता ही थे तब ही तो उन जीवों ने भी इस घटना के माध्यम से अपने पापों की निंदा गर्हा करके मुनि दीक्षा ली। और पापोका अपकर्षण करके स्वर्ग-मोक्ष पाया और पाते रहेगें।

ज्ञानी तो त्रिकालवर्ती समस्त घटनाओं के मात्र ज्ञाता ही होते हैं। और स्व-पर सब ही को अकर्ता ज्ञाता मात्र अनुभवने से शुद्धोपयोगी निर्विकल्प आनन्द में मग्न होकर नवीन कर्म नहीं बांधते हैं। पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा होने पर मोक्ष तो स्वतः होगा ही।

धन्य है यह वस्तु स्वरूप धन्य है यह मोक्षमार्ग।

पर्व और वर्तमान मूल्यांकन

श्रावकों द्वारा ८ दिन के उपसर्ग धूल धुंआ के बाद रक्षा होने पर सेवइयों की खीर बनाई गई और आहार दान हुआ। वैयावृत्ति हुई। दिल्ली यु पी हरियाणा में आज के दिन सेवइयां बनाई जाती हैं। द्वार पर अकम्पनाचार्य आदि ७०० मुनिराजों का संघ के प्रतीक स्वरूप चित्र या नाम लिखकर सेवइयां लगाई जाती हैं तब घर के लोग भोजन करते हैं।

आज भी सारे देश में भुजरियों के देने लेने का रिवाज है बालकों को लोग पैसे देते हैं फिर १-२ दिन बाद विसर्जन किया जाता है उपसर्ग दूर होने पर लोगों को विश्वास नहीं होता था तो लोग यज्ञ स्थल पर बोये गये जवारे लेकर उखाड़- २ कर प्रतीक के रूप में समाज में दिखाने लगे तो लोग हर्ष से उन्हें धन आदि पुरूस्कार देते थे।

वात्सल्य पर्व का सार्वजनिक रूप

विरोधी हिंसा के रूप में यह अनादि अनंत पर्व है; जिसमें धर्मी धर्मात्मा धर्म की रक्षा हेतु सदा उपाय किया जाता रहा है। श्रावक मुनिराजों की, कमजोर आत्म साधकों-श्रावकों की रक्षा करते रहें हैं।
वर्तमान काल में यह सार्वभौमिक पर्व बन गया है। आज महा देश भी छोटे -२ देशों की रक्षा करते देखे जाते हैं।

भाई बहिन, नारी मात्र की रक्षा करने का प्रचार किया जा रहा है। जैन धर्म तो प्राणी मात्र की रक्षा का उपदेश देता है ही रहा है।

रक्षा बंधन में वात्सल्य के लौकिक रूप एवं महत्व। इतिहास रेक्सोना ने सिकंदर की रक्षार्थ पुरु को राखी बाँधी शिवाजी ने मुस्लिम महिला की रक्षा की। चित्तोरगढ़ की रानी राणा सांगा की विधवा कर्णवती ने बहादुर शाह से रक्षार्थ हुमायूं को राखी भेजी और हुमायूं ने रक्षा की।

सिकन्दर की पत्नी ने अपने पति की रक्षा के लिए हिन्दू राजा पुरूवास को राखी भेजी थी।
नेपाल में पहाड़ी इलाकों में आज भी गुरु को एवं भांजे को राखी बाँधने की प्रथा है।

ठाकुर रवीन्द्रनाथ ने इस पर्व को भाईचारे, देश की रक्षा, पर्यावरण की रक्षा, जन हित की रक्षा के संकल्प के रूप में मानाने का आव्हान किया था।

रक्षा बंधन एवं कर्तव्य

गुरु वन्दन दिवस, वैराग्य दिवस, साधुओं की रक्षा दिवस के रूप में मनाना चाहिए।

(पर्व पूर्व, पर्व के समय एवं पर्वोपरांत) । कर्तव्य - चार प्रकार का आहार दान, देव शास्त्र गुरु की रक्षा का संकल्प, चतुर्दशी के दिन मंदिर की राखी एवं विष्णु कुमार महामुनि की पूजन, पूनम के दिन अकम्पनाचार्य एवं ७०० मुनिराजों की या रक्षा बन्धन पूजन करना चाहिए। घर जिनमन्दिर में जिनवाणी-शास्त्र की वैयावृत्ति हेतु धूप दिखाना, वेष्ठन बदलना, कवर चढ़ाना आदि किया जाना चाहिए।

साधर्मी, वैराग्य पूर्वक उपवास, ऐकाशन, संयम पूर्वक दिन व्यतीत करें, जिन धर्म, जिनालय की रक्षा,

शासन प्रभावना कैसे करें ?

मुनिराजों की भक्ति श्रावण सुदी ८ से प्रति दिन-रात की जावे बच्चों को कथा सुना कर महिमा जगाएं, चतुर्दशी को मंदिर, देव गुरु धर्म की रक्षा करने के संकल्प स्वरूप राखी बांधी जावे, अधीनस्थ सेवकों को न्योछावर राशी दी जावे। लोक मूढ़ता का त्याग किया जाये। यह पर्व वात्सल्य,भक्ति, संयम,त्याग वैराग्य, धैर्य सीखने का पर्व है न कि मोजमस्ती का।

पठनीय विषय – वात्सल्य अंग की कथा, महत्व, स्वरूप क्यों ? व कैसे ? वात्सल्य का विषय क्षेत्र (घर, समाज, साधर्मी, प्राणिमात्र, देश में वात्सल्य का निर्वाह का स्वरूप।)

१६ कारण भावना का अध्ययन। वात्सल्य अंग का फल तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध, कैसे प्रगटे ?

सबसे दुखद बात मन्दिर का सुना होना है। इन ८ दिवसों में तो विशेष प्रथमानुयोग में वात्सल्य पर्व आदि का स्वाध्याय होना चाहिए, संवाद-परिचर्चा आदि होनी चाहिए, विशेष शिविर आदि लगने चाहिए। मन्दिर भरें, भक्ति, प्रवचन, विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करे सामूहिक पूजन, उत्सब करें। ताकि नयी सन्तति जिनशासन के पर्वों की गरिमा महिमा समझ सके।

रक्षा बंधन मनाने से कोई सम्यकत्व एवं व्रतों में दूषण नहीं लगता है अतः उसे मनाने में कोई दोष नहीं है परन्तु लोक मूढ़ता मात्र रह जाना गृहीत मिथ्यात्व कहलाता है। असंयम के प्रसंग और उनसे बचने की प्रेरणाएं अवश्य लेने जैसी है जैसे बाजार की मिठाइयाँ। उपसर्ग काल में मिठाइयाँ बनाना, वास्तव में उस समय तो भक्ति, संयम, उपवास आदि का समय है, देव शास्त्र गुरु एवं मोक्षमार्ग का अपने जीवन में रक्षा के संकल्प का दिवस है।

निम्न लोक मूढ़ता से बचें

उपसर्ग काल में महिलायें मिठाइयां बनाती हैं गलत है, रात्री भोजन करना-कराना। असंयम, मनोरंजन, TV, पर्व के समय प्रतिमा, वेदी के इंद्र या दरवाजे के हेंडल, मुनियों के पीछी-कमंडल, मन्दिर के दरवाजे, इंद्र, द्वारपाल, तिजोरी को राखी नहीं बाँधना चाहिए। कोई बाँध जावे तो उसे भी खोल देना चाहिए। प्राणी मात्र की रक्षा करने का संकल्प करना चाहिए। पापियों का भी उपगूहन एवं स्थितिकरण करने का भाव रखना चाहिए।

बंगाल विहार में गुरु पूर्णिमा एवं केरल, उड़ीसा दक्षिण प्रदेश में आज भी इस दिन ऐसी ही कथा चलती है। वैष्णव लोग वामनावतार मानकर विष्णु भगवान् के रूप में पूजते हैं।

इस कथा से शिक्षायें –

१- वर न दें,
२- परिचर्या कैसे करें।
३- चलते रास्ते साधू चर्चा न करें।
४- किसी को हराने से धर्म की प्रभावना नहीं होती हैं।
५- मुनि श्रावक अन्यायी के राज्य में न रहें।
६- अन्यायी को अधिकार न दें।
७- गुरु आज्ञा का उल्लंघन न करें।
८- मोह गुरु एवं शिष्य दोनों नहीं बनने देता है।
९- प्रायश्चित्त देने में अकम्प रहो।
१०- गुरु से क्षमा नहीं दंड मांगो।

वात्सल्य अंग

एक मुनिराज किसीको बचाने के लिए उपाय नहीं कर सकते हैं। संसार सागर से बचने का उपाय बिकल्प आने पर कह सकते हैं। विष्णु कुमार मुनिराज को लोक मान्यता अनुसार प्रथमानुयोग में वात्सल्य में प्रसिद्ध कहा गया है।

चरणानुयोग में बच्चों में धर्म के संस्कार डालना। उपदेश देना, ग्रंथ लिखना। शिविर लगाना। व्यवहार वात्सल्य है।

रत्नत्रय के प्रीतिवंत ही सच्चे वात्सल्य धर्म के धारी हैं।

सम्यक दर्शन – एक द्रव्य दुसरे द्रव्य की रक्षा वध नहीं कर सकता है। और ऐसा भाव उत्पन्न ण होकर आत्मलीनता का प्रयास ही चारित्र की प्रीती है।

अपने आनंद का घात करके कोई उपकार नहीं करते हैं। शिष्यों के दोषों को देखकर कषाय, चिंता नहीं करते हैं। योग्यता प्रमाण परिणमेंगें ऐसा जानकर समता रखते हैं।

अज्ञानी को विषय कषाय की पूर्ति करने वाले वात्सल्य अंग वाले दीखते हैं आत्म हित वाले नहीं जबकि गुरु शिष्य के आत्मा के साथ-२ देह का भी ध्यान रखते हैं।

निर्ग्रन्थता

जिनदीक्षा धारण करने वाले को सब सुख प्राप्त होते हैं। भूमि के निर्ग्रन्थ स्वच्छ रखने से किसान को आनन्द होता है, आकाश के निर्ग्रन्थ-स्वच्छ होने से उत्सव सफल होता है, पानी के निर्ग्रन्थ-निर्मल पेय होने से पानी स्वादिष्ट लगता है, अग्नि के निर्ग्रन्थ-तेजस्वी रहने से आहार ठीक तरह से पकाया जाता है, चावल के निर्ग्रन्थ होने से आहार ठीक बनता है, सूर्य के निर्ग्रन्थ रहने से दिन शुद्ध होता है, चन्द्रमा के निर्ग्रन्थ रहने से रात्रि शुद्ध होती है, मन के निर्ग्रन्थ रहने से कार्य सिद्ध होता है, रत्न के निर्ग्रन्थ रहने से मूल्याधिक रहता है, सोना के निर्ग्रन्थ होने से सुन्दर आभूषण बनाये जाते हैं,

इसी प्रकार मनुष्य के निर्ग्रन्थ होने से सभी अभीष्ट कार्यों की सिद्धि होती है। अर्हन्त भगवान् का उपदेश निर्ग्रन्थ धर्म है, इसमें किसी भी प्रकार का छल-कपट या भेदभाव नहीं है, अतः आत्मोद्धारक यही धर्म है। बच्चा, गाय, भूमि, सूर्य, वृक्ष, आकाश, समुद्र, घोड़ा, पर्वत आदि पदार्थ निर्ग्रन्थ हैं। संसार में निर्ग्रन्थपन से रहित कोई भी वस्तु नहीं है।

जो लोग यह कहते हैं कि दिगम्बर को देखने से गाय, बैल, पशु मर जाते हैं, उस दिन भोजन नहीं मिलता, घर बिना सन्तान का हो जाता है। यदि यह ठीक मान लिया जाए तो संसार में किसी को खाने को नहीं मिलेगा, क्योंकि पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी दिगम्बर हैं। इनके दर्शन पद-पद पर प्रत्येक व्यक्ति को होते हैं। दिगम्बर मुनि का दर्शन करने से तो प्राकृतिक धर्म की ओर झुकाव होना चाहिए। पाखण्डी, ढ़ोंगी और मिथ्या आडम्बर में लगे हुए साधुओं के दर्शन से कल्याण की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यदि मयूरपिच्छी रहने के कारण दिगम्बर साधु अदर्शनीय मानते हैं तो यह भी मिथ्या है, क्योंकि मयूरपंख के मुकुट आदि भी बनते हैं और बड़े-बड़े लोग इनको काम में लाते हैं।

यदि दिगम्बरत्व को ही दोष मानते हैं, तो छोटे बच्चे, पशु, पेड़ आदि भी दिगम्बर रहते हैं, इनको देखने में भी दोष मानना पड़ेगा। यदि चटाई रखने के कारण दिगम्बर साधु में दोष है तो चोल देश में रहने वाले सभी चटाई पर शयन करते हैं। कमण्डलु में दोष बताते हो तो कमण्डलु नारियल से बनता है, फिर नारियल उपयोग में लाने वाले कैसे निर्दोष हो सकेंगे? यदि स्नान न करने से दोष मानते हैं तो सूर्य, चन्द्र को दोष क्यों नहीं लगता। मैल लगा रहने से दोष मानते हैं तो पृथ्वी पर कूड़ा सदा पड़ा रहता है, फिर उसे क्यों देखते हैं? खड़े होकर भोजन करना दोष का कारण है तो पशु खड़े होकर आहार करते हैं, फिर उन्हें क्यों देखते हैं? पंच महाव्रत धारण करने से दोष समझते हैं तो भीष्म, कर्ण, युधिष्ठिर आदि एक-एक व्रत के धारण करने वाले निर्दोष कैसे माने जा सकेंगे। यदि निर्वाण प्राप्त करना झूठ है तो गाय की योनि में 33 करोड़ देवताओं का निवास है, यह कैसे सच माना जायेगा?

श्री रक्षाबंधन पर्व भक्ति

हम सब ही मिलकर मंगलमय, श्री रक्षाबंधन पर्व पर संकल्प करेंगे।
जिनशासन की रक्षा का हम संकल्प करेंगे ॥ टेक ॥
जो आत्म घातक मोह रागादिक अरे परिणाम।
हैं भव भ्रमण के कारण, क्लेश देते आठों याम ॥
इन दुर्भावों के नाश का संकल्प करेंगे ॥ 1 ॥

परमार्थ देव-शास्त्र-गुरुवर का करें श्रद्धान।
मंगलमयी परमार्थ धर्म की करें पहिचान ॥
अविछिन्न भेदज्ञान का संकल्प करेंगे ॥ 2 ॥
अज्ञान वश देहादि में नहीं मग्न रहेंगे।
विषयों के लक्ष्य से नहीं कषाय करेंगे ॥
अब स्वानुभव प्रगटाने का संकल्प करेंगे ॥ 3 ॥
पर को ही दुःख का कर्त्ता मान, क्रोध नहीं करें।
अपने को पर का कर्त्ता मान, मान नहीं करें ॥
ज्ञाता अकर्त्ता लखने का संकल्प करेंगे ॥ 4 ॥
निज ज्ञान वैभव से सतत् आराधना करें।
जड़ बाह्य वैभव से अहो प्रभावना करें ॥
सर्वस्व समर्पण का सत् संकल्प करेंगे ॥ 5॥
कुरीतियों का उन्मूलन, हम ज्ञान से करें।
निज आचरण से धर्म का प्रसार हम करें ॥
सम्यक् रत्नत्रय मार्ग का संकल्प करेंगे ॥॥ 6 ॥
हो अपने कष्टों की हमें परवाह ही नहीं।
साधर्मी के कष्टों प्रति बे-परवाह हों नहीं ॥
निज-पर कल्याण का अहो संकल्प करेंगे ॥ 7 ॥
अब आत्मा को जाना हमने सबसे ही न्यारा।
समतामयी यह धर्म हमको प्राणों सा प्यारा ॥
निर्ग्रन्थ पथ में बढ़ने का संकल्प करेंगे ॥ 8॥
अब भायें तत्त्व भावना, निरपेक्ष नित रहें।
आया अवसर नहीं क्षण भर भी प्रमाद हम करें ॥
अब सम्यक् आत्म-ध्यान का संकल्प करेंगे ॥9॥
संकल्प के बिना अनेक होते हैं विकल्प।
आकुलता रहती जीव तब तक हो न निर्विकल्प ॥
ज्ञायक हैं ज्ञायक रहने का संकल्प करेंगे ॥ 10 ॥
सम्यक् पुरुषार्थ से परम साध्य को पायें।
जिनमार्ग पाया अब नहीं भव-भव में भ्रमायें ॥
ध्रुव सिद्ध पद पायें यही संकल्प करेंगे ॥ 11 ॥

आरती

रत्नत्रय आरती ----------------२ अक्टू १९९१

आरती कीजे भैया स्वेरुप शरन की,
आनंद मय शिव मांही गमन की ।१
पहली आरती स्वरूप दरश की,
मिथ्या तमहत सद्दर्शन की ।।२

दूसरी आरती सम्यक ज्ञान की,
स्वपर प्रकाशक सहज ज्ञान की ॥३
तीसरी आरती सम्यक चरित् की,
आनंद मयी स्वरूप मगन की ॥४
जो रत्नत्रय पावे ध्यावे,
सो ही प्रिय विधि स्वरूप रमण की ॥५

क्षणिका

आनंद मयी चैतन्य लोक, अहो ! आनंद ही पायारे !
दुःख का नहीं नाम निशान, सुख विलसाया रे ॥

विद्वानों के आलोचनार्थ सादर प्रस्तुत – परिवर्तन/ परिबर्द्धन आमंत्रित है - सुमार प्रकाश जैन ७-१२-१२

रक्षाबंधन कथा --------------------स्व.कवि नाथूराम लमेचु

दोहा
वन्दों वीर जिनेश पद, मुक्ति महल सोपान।
रक्षा बंधन की कथा, कहूँ सुनो धर ध्यान ॥१.
चौपाई
मगधदेश देशन शिर मौर, राजगृही नगरी तिस ठौर।
राज करे तहां श्रेणिक भूप, नारी चेलना गेह अनूप ॥२
तापुर निकट पंचगिरी जान, विपुलाचल तिन मांहि प्रधान।
समोशरण अंतिम जिनराय, ता गिरी पै आयो सुखदाय ॥३
सो वनमाली नृप से कहो, सुन राजा अत्यानंद लहो।
पुरजन सहित गयो नर ईश, त्रिविधि शुद्ध बंदे जगदीश ॥४
फिर बंदे गौतम गणराज, नर – कोठा बैठो वृष काज।
हाथ जोड़ विन्वे कर सेव, रक्षाबन्धन कहिये देव ॥५
को बाबन कैसे बलि छलो ? कैसे इनको वर्णन चलो ??
तब गणधर बोले सुन संत, कुरुजांगल शुभ देश बसंत ॥६
नगर हस्तिनापुर शुभ वसे, महापद्म चक्री नृप लसे।
कुरुवंशी त्रिय लक्ष्मीवती, पटरानी पतिभक्ता सती ॥७
ताके दो सुत गुण भंडार, पद्मराय अरु विष्णुकुमार।
समय पाय नृप भयो विराग, राजभार को कीनो त्याग ॥८
पद्म पुत्र को नृप पद दियो, आप कारण तप वन में गयो।
संग पिता के विष्णुकुमार, लीनी दीक्षा शिव सुखकार ॥९

यह तो कथन रहो इस ठौर, अंतर कथा चली अब और।
मालव देश उज्जैनीपुरी, श्रीवर्मा नृप नीति सु धुरी ॥१०
श्रीमती रानी तिस धाम, अनुपम पतिभक्ता शुभ भाम।
तिस राजा के मंत्री चार, ब्राह्मण वैष्णव मत के धार ॥११
पहिला बलि फिर नमुचि बखान, तृतीय बृहस्पति नामा जान।
चौथा तास नाम प्रह्लाद, जैन धर्म से धरें विषाद ॥१२
आये तहां यती निर्ग्रन्थ, दर्शक स्वर्ग मुक्ति का पंथ।
सूरी अकम्पन तिस शिरमौर, ऋषि सातसौ तिन संग और ॥१३
पुर के बाहर वन है जहाँ, करत बिहार सु आये तहां।
उतरत मुनि सुनी यह बात, जो नृप के मंत्री विख्यात ॥१४
सो है जिनमत द्वेषी सर्व, धरें विभाव विद्या का गर्व।
तब गुरु ने सब शिष्य बुलाय, तिनसे यह भाषी समझाय॥१५
राजा मंत्री आवें जबैं, गहो मौन मत बोलो तबै।
मतद्वेषी से करहो बात, तो वे व्यर्थ करें उत्पाद ॥१६
तामें कुशल संघ को नाहिं, यह व्रते मेरे मन के माहिं।
मतद्वेषी से करो विवाद, तो बाढ़ेगा व्यर्थ विषाद ॥१७
खोटी संगति नृप की जहां, होय उपद्रव निश्चय तहां।
यासे सबै मौन व्रत गहो, काहू से कछु बात न कहो ॥१८
एवमस्तु सब शिष्यों कही, गुरु की आज्ञा दृढ़ कर गही।
इस अवसर श्रुतकीर्ति मुनि, ताने गुरु आज्ञा न सुनी ॥१९
प्रथम गयो पुर भिक्षा काज, पीछे आज्ञा दी ऋषीराज।
यह तो कथन रहो इस ठौर, आगे सुनो कथांतर और ॥२०
पुर में यह श्रावक जन सुनी, आये बन में बहु मुनि गुनी
तब सब चले बंदने काज, सो देखे जाते महाराज ॥२१
मंत्रिन से नृप ऐसी कही, आज पर्व क्या कहिये सही।
कहाँ जात सब हर्षित धाय, तब बोले मंत्री सुन राय ॥२२
जैनिन के गुरु आये नंग, तहां जात सब धरें उमंग।
तब नृप बोले हम भी जात, देखे तो वे कहा करात ॥२३
मंत्री कहैं न दर्शन योग, कहें अदर्शनीय हैं ये लोग।
नृप बोले हम देखें जाय, देखें से क्या पाप लगाय ॥२४
अमृत देखे अमर न होय, विष देखे से मरे न कोय।
यह अपनों अपनों विश्वास, तुम्हें बुरे मत जाओ पास ॥२५
ऐसे कह नृप चाले जबै, संग लगे तब मंत्री तबै।
जो नृप साथ न जैहैं आज, बुरो मानहे तो महाराज ॥२६
ऐसे चित्त विचार कराय, चले विवश हो नृप संग धाय।
राजा आवत देखे जबै, ध्यानारूढ़ भये मुनि सबै ॥२७
देखे भूपति सब ऋषि राय, बैठे नाशा दृष्टि लगाय।
ध्यानारूढ़ न देखें सुनें, स्वात्मरूप हिरदय में गुनें ॥२८
राजा सबको करत प्रणाम, क्रमशः चलो जात गुणधाम।

किसी न नृप को दयी अशीस, तदपि सहर्ष चलो नर ईश ॥२९
अवसर पाय सु मंत्रिन कही, देखो भूपति सब मुनि सही।
कैसे बैठे धारे दंभ, मानो सब पत्थर के खम्ब ॥३०
बोल न जाने बोले कौंन, योगी क्रूर सु साधे मौन।
विद्या बिन नर पशु सम सही, बार-२ मंत्रिन यह कही ॥३१
करत ठिठोली जाते चले, आगे पुर अपने को रले।
कर अहार श्रुतसागर मुनी, आवत देखो मंत्रिन गुनी ॥३२
आपस में बोले विहँसाय, तरुण वृषभ इक आवत धाय।
निकट मुनीश्वर आये जबै, मंत्रिन करी ठिठोली तबै ॥३३
तक्र पीत युग कुक्ष भरन्त, आये भले धुरंधर संत।
तब मुनिवर यों बोले तहां, तक्र पीत देखो तुम कहाँ ??३४
पीत होई गोमूत्र सुजान, ताको करत तुम नित पान।
तक्र मूत्र का भेद न लहो, यासे तक्रपीत तुम कहो ॥३५
अब इनसे मैं पूछों एक, श्री महाराजा करो विवेक।
गाय योनि में द्विज कहैं, तेतीस कोड़ि देवता रहें ॥३६
जबै गाय को भोगे बैल, तब वे लेंय कहाँ की गैल।
अथवा करें वीर्य वृष पान, सर्व देवता अमृत जान ॥३७
कहैं गऊ को द्विज मात, यह सब बात जगत विख्यात।
क्यों न कहै बैल को बाप, ताको न्याय करो नृप आप ॥३८
बार बार जब नृप मुस्क्याहिं, तिनको देखत विप्र लजाहिं।
चारों विप्र चले खिंसियाई, मुनि भी चले सु वन को धाय ॥३९
यह सब भयो वितंडावाद, उभय पक्ष से बढ़न विषाद।
जैसे मंत्री तैसे मुनि, कलुषित बात कही अरु सुनी ॥४०
पहुंचे पास सुगुरु के जबै, कहो भेद मंत्रिन को तबै।
कहैं गुरु तुम अनुचित करी, दुष्टों से वाणी उच्चरि ॥४१
अब वे द्वेष चित्त में धरें, निशि उपसर्ग संघ पे करें।
यासे अब तुम छोड़ प्रमाद, धरो ध्यान जहां कीनो विवाद ॥४२
तब मुनि गुरु आदेश प्रमाण, योग धरो जा वाही थान।
भई रात्री द्विज कोप कराय, चले खडग ले वन को धाय ॥४३
चलत चलत सो आये तहां, बाद भयो थो मुनि से जहां।
देखे तहां धरें मुनि ध्यान, निश्चल आसन मेरु समान ॥४४
देखत ही तिनको पहचान, बोले वचन धरें अभिमान।
याही ने कीनो अपमान, यातें हनेंगे याके प्राण ॥४५
औरों का क्या कीजे घात, उन तो आधी कही न बात।
सब मिल याको मारें आप, यासे लगे बराबर पाप ॥४६
एकै साथ वार सब करो, आगा-पीछा चित्त न धरो।
ऐसी सम्मति कीनी जबै, वनरक्षक सुर देखी तबै ॥४७
जब इन हतन उठायो खड्ग, तब सुर कीले तिनके अंग।
खड़े रहे सो हले न चले, तोलों भयो सकारो भले ॥४८

सुनी नृपति ने जब यह बात, करते थे ये मुनि को घात।
तब भूपति तहां पहुंचो जाय, मुनिपद वन्दे शीश नवाय ॥४९
और दई मंत्रिन धिक्कार, भये अधोमुख सो तिसवार।
पुरजन सब द्विज निंदा करें, मुनि को धन्य-धन्य उच्चरें ॥५०
तब ही देव प्रगट हो कही, ये हत्यारे ब्राह्मण सही।
मुनि घातन को आये एह, मैंने कीली इनकी देह ॥५१
हो सकोप नृप बोले तबै, इनको देहु शूली अबै।
यासे फिर कोई यह काम, करे नहीं अति अघ का धाम ॥५२
तब मुनिवर बोले सुन देव, इनको छोड़ो तुम यश लेव।
और नृपति से ऐसे कही, तुम भी प्राण न घातो सही ॥५३
इन्हें दण्ड नृप और ही देउ, ऐसे मुनिवर वचन कहेउ।
इतनी सुनी देव ने जबै, चारों ब्राह्मण छोड़े तबै ॥५४
तब नृप ने रासभ मंगवाय, चारों द्विज हि सवार कराय।
तिनको मुख अति कारो कियो, दण्ड स्वदेश निकारो दियो ॥५५
हाट वाट में तिन्हें फिराय, आगे ढोल सु बजावत जाय।
ऐसो काम करेगो कोय, पावेगा फल ऐसा सोय ॥५६
चारों ब्राह्मण तज के देश, भटकत फिरे अनेक प्रदेश।
चलत – चलत सो पहुंचे तहां, गजपुर कुरुजांगल में जहां ॥५७
पद्मराय जहां राज कराय, चारों जन तहां पहुंचे आय।
आशीर्वाद दियो इन जबै, भूपति इनको पूछी तबै ॥५८
कहो आप निवसत हो कहाँ ? कौन कार्य को आये यहाँ ??
बोले द्विज उज्जैनी वास, फिरत नौकरी करत तलाश ॥५९
सो आये तुम्हरे दरबार, होवे कार्य सब म्हारे सार।
तब बलि को मंत्री पद दियो, ओरहीं यथायोग पद दियो ॥६०
ऐसे रहत सु कुछ दिन गये, दुर्बल होते राजा दिखे।
कैसे दुर्बल भयो शरीर, रहत कहाँ तनु तुमरे पीर ??६१
ऐसा काम जगत में कौन, हमको कठिन बताओ तौन।
तब राजा बोले सकुचाय, हम सेवक सो कैसे बताय ॥६२
पिता हमारे थे चक्रेश, तिन सेवक थे सर्व नरेश।
वे तप करने वन को गये, उन पीछे भूपति हम भये ॥६३
नृपति सिंहबल एक कहाय, वसत कुम्भपुर में सो भाय।
पहिले सेवक हमरो रहो, अब वह मानत नहीं कहो ॥६४
ताकी है दृढ़ सेन विशाल, ताका सोच मुझे अति हाल।
यासे दुर्बल भयो शरीर, और कछु नहिं तन में पीर ॥६५
तब बलि विप्र राय से कही, वाही पकड़ लाऊं मैं सही।
थोड़ी सेना दीजे साथ, निवसों यहाँ खुशी से आप ॥६६
तबहिं सेन दे भेजो राय, सो कछु दिन में पहुंचो वह जाय।
सेना राख घात में सोय, गयो सभा में हर्षित होय ॥६७
तीनों विप्र संग है तास, पहुंचो छल करने नृप पास।

जाय राय को दई अशीष, कोटि वर्ष जीवो नर ईश ॥६८
नृप ने बहुत कियो सन्मान, तब द्विज बोले छल - बल ठान।
बात एक कहना है राय, सो सब आगे कही न जाय ॥६९
चलो बहाना कर एकंत, तहां कहेंगे सब विरतंत।
उचित हमारे डेरे चलो, वहां सुअवसर सुनवो भलो ॥७०
राजा कही भली द्विजनाथ, ऐसे कहके चालो साथ।
जब ही पहुंचे डेरो बीच, दृढ़ बंधन तिन बांधो खीच ॥७१
गुप्त भेद न जानो कोय, गये गुप्त ले ताको सोच।
जाय पद्मनृप आगे करो, तब सब भेद बतायो खरो ॥७२
कही सिंहबल से सुन राय, अपनों भलो चहत जो जाय।
प्रथम पद्मधर की जो सेव, करते सो कीजे स्वयमेव ॥७३
नंतर होय प्रतिष्ठा हीन, और राह मत चलो प्रवीन।
करो मित्रता नृप के साथ, यासे खुशी रहे तुम नाथ ॥७४
करो सिंहबल अंगीकार, तब नृपपद्म कियो सत्कार।
विदा मांग नृप घर को गयो, पद्मराय को सेवक भयो ॥७५
कहें नृपति बली से हर्षाय, जो मांगो सो देऊ गहाय।
तुम उपकार न भूलों कदा, सुयश तुम्हारो मानों सदा ॥७६
तब बलि नृप को जान प्रसन्न, बोले वचन भूप आसन्न।
जो भूपति तुम सत्य उदार, मानत हो मेरो उपकार ॥७७
मेरो वर राखो भंडार, काम पड़ेगो मांगूं सार।
अभी न मुझको चाह सु देव, जो कुछ बन हैं करिहों सेव ॥७८
एवमस्तु तब भूपति कही, जब चाहो तब लीजो सही।
ऐसे रहत बहुत दिन भये, समाचार अब सुनियो नये ॥७९
सूर अकम्पन करत विहार, आये गजपुर वनहिं मंझार।
और सातसौ मुनिवर साथ, बहु ज्ञानी विद्या के नाथ ॥८०
मुनि आये बलि जाने जबै, तब द्विज सम्मति कीनी सबै।
राजा जैनी है मुनिभक्त, उनकी सेवा में आशक्त ॥८१
पूर्व भेद कहैं मुनि कहीं, तो हम रहना होगा नहीं।
यासे अब वर मांगो जाय, तो सब लेवों काम बनाय ॥८२
यह विचार नृप के ढिंग गयो, कर प्रणाम वर मांगत भयो।
राजा कही कहो सो देऊं, कैसे भी नाहिं न करूँ ॥८३
तब बलि कही भले महाराज, सात दिवस को दीजे राज।
काम पड़ो ऐसा ही आय, हो प्रसन्न दीजे कुरु राय ॥८४
तब नृप राज बलि को दियो, आप वसे अन्ते कर लियो।
तब बलिने जहाँ उतरे मुनि, मध्य यज्ञ की गाड़ी धुनी ॥८५
आसपास मुनि रोपो वाड़ि, रोके सब मुनि घेरा मांडि।
रची यज्ञ नरमेघ ही नाम, आरम्भो मुनि नाशन काम ॥८६
अस्थि रोम पल चर्म जलाय, धुंआ करो मुनिगण ढिंग जाय।
उठी तहां दुर्गन्ध अपार, होमे जंतु अग्नि में डार ॥८७

तब सब मुनि यह कियो विचार, विघ्न टले तो लेंय आहार।
नंतर हमरे हैं सब त्याग, यो संन्यास धरो बढ़ भाग ॥८८
नगर लोग सब भये अधीर, कासे कहें नृपति बिन पीर।
अब तो राजा है बलि दुष्ट, करे अधर्म आप हो रुष्ट ॥८९
ताके शरण सु जैये कहा, वह तो दुष्ट अधर्मी महा।
मुनि नाशन को उद्यम कियो, यज्ञ नाम नरमेघ सु दियो ॥।९०
दोहा
मेघहि वरसे तृण जरे, वाडि खेत को खाय।
भूप करे अन्याय तो, न्याय कौन पै जाय ॥९१
चौपाई
देख अनर्थ प्रजा के लोग, बैठे खान-पान तज भोग।
जब मुनि बचिहैं तब हम खाय, नंतर अनसन कर मर जाय ॥९२
प्रजुली अग्नि धुआं अति भयो, फ़ैल सर्व नभ में सो गयो।
फटे धुआं से सब मुनि कंठ, विकल भये सब जैसे सँठ ॥९३
इत दुर्गन्ध नाक में जाय, सहें कष्ट अति सब मुनिराय।
आधी रात व्यतीती जबै, भयो सुनो जो कारण सरे ॥९४
मिथिलापुर के वन में मुनि, सारचंद आचारज गुणी।
करते थे तप तिन देखीयो, श्रवण नक्षत्र कम्पत पेखियो ॥९५
तब तिन अवधि विचारो ज्ञान, जानो मुनि उपसर्ग महान।
हा हा कष्ट ! कहो मुनि जबै, विस्मित क्षुल्लक बोलो तबै ॥९६
पुष्पदंत था जिसका नाम, बैठा था जो ताहि ठाम।
हे गुरु ! हुआ कहाँ कुछ कष्ट ? वर्ते है कहिये सु स्पष्ट ॥९७
तब गुरु अवधि जोड़कर कही, पुष्पदंत तुम सुनियो सही।
गजपुर के तट वन के बीच, यज्ञारम्भ करो बलि नीच ॥९८
मुनि मारन को उद्यम ठान, नाम धरो नरमेघ अज्ञान।
तहां अकम्पन गुरु के संग, और सात सौ मुनि हों तंग ॥९९
रोम चर्म पल आदि अशुद्ध, वस्तु जलाई है हो क्रुद्ध।
तो दुर्गन्ध धुंआ से मुनि, नेक न चिगिये निज के धुनी ॥१००
तब क्षुल्लक जोड़े कर दोई, वचने को उपाय कुछ होई।
तो मुझको बतलाओ अबै, साध्य होई सो करिहों सबै ॥१०१
तब गुरु बोले तुम खगराय, करो काम यह अब ही जाय।
धरनिभूषण गिरि पर मुनि, विष्णुकुमार करें तप गुणी ॥१०२
उपजी तिन ही विक्रिया ऋद्धि, वे सब करहिं कारज सिद्धि।
उनके पास जाओ तुम अबै, ततक्षिन भेद सुनाओ सबै ॥१०३
तुरत गयो सो नभ के पंथ, विष्णु कुमार जहाँ निर्ग्रन्थ।
कर प्रणाम सो बैठो पास, सुगुरु वचन सब करे प्रकाश ॥१०४
कही हस्तिनापुर वन मुनि, घिरे अकम्पन आदिक गुणी।
बलि कीनो उपसर्ग अपार, रची यज्ञ नरमेघ गंवार ॥१०५
उपजी तुम्हें विक्रिया ऋद्धि, सो प्रभु ! काज करो तुम सिद्धि।

सारचंद्र आचारज कही, अवधिज्ञान बल जानी सही ॥१०६
घिरे सातसौ मुनिवर नाथ ! तिन्हें बचाओ गहि निज हाथ।
वात्सल्य गुणधारी आप, प्रगट करो जिन पंथ प्रताप ॥१०७
तब मुनिवर भुज लम्बी करी, परखन को सो सागर परी।
तुरत चारण बल मुनि चले, गजपुर में सो पहुंचे भले ॥१०८
प्रथम गये अग्रज के पास, महल पद्मरथ करत निवास।
ताहि बुलाय कहे वच गूढ़, कुरुकुल में तू उपजो मूढ़ ॥१०९
जा कुल में श्रेयांस नरेश, भये प्रथम दाता दानेश।
तीन तीर्थ पति जाकुल भये, शांति कुन्थु अरनाथ सु ठये ॥११०
ते चक्री अरु काम कुमार, तीन तीन पद धारण हार।
तथा चक्रपति हम पितु भये, जाने राज तुम्हें यह दये ॥१११
ता कुल में उपजे तुम शूल, मुनिघातक पातक के मूल।
कहै पद्मरथ जोड़े हाथ, मेरी विनय सुनो मुनिनाथ ॥११२
मैं उपसर्ग न मुनि को कियो, कारित अनुमोदन भी न कियो।
यह सब कीनो बलि खल काज, ताका हेतु सुनो मुनिराज ॥११३
सिंहबल भूपति भयो विरुद्ध, ताहि पकड़ बलि कीनो शुद्ध।
तब मैं कही कहो क्या देऊँ, बोलो बलि चहिये तब लेऊं ॥११४
सो कीनो मैंने स्वीकार, तासे वचन गयो मैं हार।
अब तिन छलकर मांगो राज, सात दिवस को श्री मुनिराज !!११५
सो मैं देकर महलन रहो, मो वश नाहिं सत्य मैं कहो।
तुम समर्थ सब बातन मुनि ! उचित होई सो कीजे गुणी ॥११६
तब मूनि बावन रूप बनाय, विप्र भेषकर पहुंचे जाय।
जहाँ करत बलिराजा दान, देखत इन्हें कियो सम्मान ॥११७
कहो किमिच्छा है द्विजराज, सो ही तुमको देऊँ मंगाय।
तब बलि से बोले मुनिराय, तीन पेंड धरती मिल जाय ॥११८
अपने डग से नापूं सोह, अन्य नाप से लेऊं न कोय।
देना होई करो स्वीकार, देखो नहीं दूसरों द्वार ॥११९
तामैं कुटी सु लेऊं बनाय, अधिक नहीं कुछ चहिये राय।
बोलो बलि मांगो कुछ ओर, सब कुछ देने को इस ठौर ॥१२०
बोले मुनि मैं अधिक न लहों, बार बार याचन न कहों।
विधि संकल्प करोगे जबै, तीन पेंड भी ले लों तबै ॥१२१
कर संकल्प भूमि बलि दई, स्वस्ति वचन कहि मुनिने लई।
तबै विक्रिया ऋद्धि प्रभाव, दीर्घ देह करी मुनिराय ॥१२२
प्रथम चरण सुरगिरि(सुमेरु पर्वत)पर धरो, मानुषोत्तर दूजो परो।
तीजे पद को भूमि न रही, तब मुनिवर नृप बलि से कही ॥१२३
एक पेंड भू दीजे और, सो तुम हमें बताओ ठौर।
तब बलि कही नाप मम पृष्ठ, अब न भूमि रही कुछ शिष्ठ ॥१२४
जब मुनि चरण पीठ पर धरो, तब ही बलि खल अति थरहरो।
तुरत सुरासुर आसन चले, अवधि विचार शीघ्र सो चले ॥१२५

नारद और सुरासुर सबै, आये यज्ञ क्षेत्र में तबै।
सबने मुनि को किया प्रणाम, क्षमा-२ सब बोले ताम ॥१२६
हे करुणा निधि दीनदयाल ! क्षमा करो पद लेवो टाल।
तब मुनि शांत वृत्ति निज धरी, धन्य-२ सब ध्वनि उच्चरि॥१२७
यज्ञ नष्ट कर काढ़े मुनि, आयो नृपति जबै यह सुनी।
मुनि स्तवन करे नर ईश, बार-२ पद नावे शीश ॥१२८
हे करुणा निधि धर्म जहाज, डूबत से राखो तुम आज।
श्रावक जन सुन आये सबै, वैया वृत्य करी मुनि तबै ॥१२९
धुआं योग पानी दृढ़ वहो, फटे कंठ कुछ जाय न कहो।
विकल पड़े मुनि सुरति बिहाय, तब श्रावक उपचार कराय ॥१३०
नेत्र नाक धोए जल सबै, करी पवन सम चेते तबै।
नृपति कही बलि खल को दण्ड, देऊँगा मैं महा प्रचंड ॥१३१
यासे ऐसा कारज कोय, फिर न करे कभी किसी से होय।
तब आचारज आज्ञा करी, कीजे क्षमा नृपति इस घरी ॥१३२
दया धर्म को जानो मूल, हिंसा क्रोध धर्म प्रतिकूल।
यासे तुम हिंसा न करो, क्षमा भाव अब इन पर करो ॥१३३
इनने जो कीनो है पाप, अपना किया भोगे हैं आप।
जैन अहिंसा धर्म प्रधान, अन्य धर्म हिंसा मय जान ॥१३४
धर्म आड़ ले हिंसा करें, सो सठ मर दुर्गति दुःख भरे।
जो पापी पल भक्षी भये, तथा मद्यपनी परिणये ॥१३५
विद्या पढ़ तिन कविता करी, तामें युक्ति आपनी धरी।
धर्म विषें जो हिंसा होय, तामें पाप लगे न कोय ॥१३६
रचे कुकर्मिन ऐसे ग्रन्थ, सो जानो दुर्गति के पंथ।
ये बातें चारों द्विज सुनी, कर विचार निज हिर्दयगुनी ॥१३७
तब लागे मनमें पछतान, हाय पाप हम किये महान।
हिंसा धर्म सदा रत रहे, निशिदिन हिंसा मारग वहे ॥१३८
धन्य-धन्य जिनधर्म अनूप, सत्य धर्म का जामें रूप।
हम पापी कैसे अघ किये, कठिन कष्ट मुनिगण को दिये ॥१३९
इन दो वार छुड़ाओ हमें, को अपराध कहो इम क्षमें।
भये सहायक इनके देव, हमको कष्ट भयो स्वयमेव ॥१४०
हम दुर्गति जीवित ही भई, आगे सुगति दीखत नई।
यासे तजके हिंसा धर्म, जो जग में प्रत्यक्ष कुकर्म ॥१४१
जैन धर्म को आश्रय लेय, मिथ्या धर्म जलांजुलि देय।
यह विचार मुनि को शिर नाय, बोले गुरुसे विनय कराय ॥१४२
श्रावक के व्रत हमको देउ, इतना सुयश जगत में लेउ।
तब गुरु ने श्रावक व्रत दिये, चारों भक्ति भाव कर लिये ॥१४३
जब सब साधु स्वस्थ चित भये, तब पुर में भोजन को गये।
उपसर्ग विजेता मुनिन को जान, फटे कंठ तिनके पहचान ॥१४४
सीमई दूध और मिष्ठान्न, त्यार किये दीने मुनि दान।

यासे जीमत कष्ट न होय, और विकार न व्यापे कोय ॥१४५
घर-२ श्रावक देखे पंथ, कब आयें मुनिवर भगवंत।
जो देखें पडगाहें सोह, देत अहार मुदित मन होय ॥१४६
ऐसे सब मुनि ले आहार, चले वन को पंथ निहार।
जब मुनि भोजन बीतो काल, और न पाये सुगुरुदयाल ॥१४७
तब श्रावक श्रावक ही जिमाय, भोजन आप करे हरषाय।
श्रावण सुदी पूनो दिन कहो, श्रवण नक्षत्र सु ता दिन रहो ॥१४८
रक्षा भई मुन्यों की तबै, सो पावन दिन मानो सबै।
ताकी याद राखने हेत, चिह्न बांधियो हर्ष समेत ॥१४९
सूत्र पाट आदिक के तार, कर में बांधे उत्सव धार।
तबसे यह पावन दिन जान, रक्षा बंधन भयो प्रधान ॥१५०
विष्णुकुमार सुगुरु ढिंग गये, प्रायश्चित लेकर शुद्ध भये।
छेदोपस्थापन विधि ठान, शुद्ध होय तप करो महान ॥१५१
पालो वात्सल मुनि अंग, मरत बचायो मुनि को संग।
ऐसे श्री मुनि विष्णुकुमार, तिन पद वंदों वारम्वार ॥१५२
अरु जो कहें विष्णु अवतार, लीना भूमि उतारनभार।
जिनको एता ज्ञान न रंच, ते यों मिथ्या रचत प्रपंच ॥१५३
जिस कारज को देव मुनीश, करन समर्थ सुविस्वावीस।
तिसको ईश्वर दौड़े आप, तामें बाढ़े कौन प्रताप ॥१५४
जो कार्य प्यादे कर सके, आगा पीछा रंच न तके।
ऐसे तुच्छ कार्य के हेत, दौड़े नृप शोभा न देत ॥१५५
पर जिनके न ह्रदय विवेक, सो ईश्वर को धारें टेक।
अतिशय कारज देखें कहीं, करें कल्पना ईश्वर तहीं ॥१५६
सुनि कथा इम श्रेणिक भूप, पालन वात्सल अंग अनूप।
जो यह कथा सूने मन ल्याय, पाले वात्सल अंग दृढ़ाय ॥१५७
सो क्रम-क्रम से कर्म नशाय, भव्य जीव शिवपुर को जाय।
यासे पढ़ो सुनो नर-नार, वात्सल्य गुण सु प्रकटे सार ॥१५८
दोहा
रक्षा बंधन की कथा, रची सु नाथूराम।
भूल देख क्षमियो सुधी, शुद्ध करो तज काम ॥१५९
दशमी कारी जेठ की, पूरी चन्द सुवार।
उनइससौ अठ्ठावन, सम्वत कहो सम्हार ॥१६०
० इति श्री रक्षाबंधन कथा ०

भाव रक्षा बंधन - ओ भैया मेरे स्वानुभूति प्रगटाना,

ओ भैया मेरे स्वानुभूति प्रगटाना, पाया हैं अवसर सुहाना।-२
चिंतामणि सम जिन वृष पाया, फिर भी सेवत विषय कषाया।
अब कछु तो विवेक करना -२
चेतो अवसर व्यर्थ न खोना, तत्वों का सत् निर्णय करना।
भेद विज्ञान जगाना -२
कर्म राग पर्याय से न्यारा, ज्ञायक प्रभु अनुपम सुखकारा।
निज में ही दृष्टि जमाना-२
आत्म भाव ही मुनिसंघ है, मोहादिक बली मानो।
देवे दुःख मनमाना -२
मोहादिक को दूर भगाओ, सम्यक्दर्शन प्रगटाओ ॥
श्री गुरु विष्णु समाना -२
सम्यक दर्शन ज्ञान सहित हो, सम्यक चारित्र पूर्ण करने को।
मुनिपद सहज ही धराना -२
बाह्य उपसर्ग नहीं दुःख दाता, व्यर्थ विकल्पों से दुखपाता।
निर्विकल्प हो जाना -२
जब तुम निज में ही ठहरोगे, कर्मादिक खुद ही भग जाते।
स्वयं सिद्ध पद पाना -२

कैसा बंधन कैसी रक्षा ?

कैसा बंधन कैसी रक्षा ? व्यर्थ विकल्प करेरे।
है त्रिकाल निर्बंध स्वरक्षित अंतर दृष्टि लखेरे ॥

दो द्रव्यों की सत्ता न्यारी, कैसे बंधन होवें ?
निज स्वाधीन स्वरूप भूलकर, मूरख बंधन जोवे ॥

एक क्षेत्र अवगाही होने पर भी, एक नहीं है।
निमित्त नैमित्तिक दिखने पर भी, कर्ता-कर्म नही है ॥
भेदज्ञान दृष्टि से चेतन, सबसे भिन्न दिखे रे।

जय – जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार।

१- दुष्ट बली जब कुमति उपाई, संघ घेर नरमेघ रचाई।
मच गया गज पुर हाहा कार...
२- संघ उपसर्ग की खबर सु-पाकर, पुष्पदंत मुनि अतिघबराकर।
आकर तुमसे करी पुकार... ...
३- गुरु तुम वीतरागता धारी, विक्रिया ऋद्धि प्रगट भई भारी।
उमड़ा वात्सल्य सुखकार...
४- बौने द्विज का वेष बनाया, चमत्कार तप का दिखलाया।
पड़ गया नृप बली चरण मंझार... ...

५- मुनियों का उपसर्ग मिटाया, सबको दया धर्म सिखलाया।
हुआ जिनधर्म का जय जयकार...

६- क्षमा भाव धरि बलि को छोड़ा, उसने हिंसा से मुख मोड़ा।
धारा जैन धर्म सुखकार...

७- सर्व जनों में आनंद छाया, रक्षाबंधन पर्व मनाया।
हर्षित होय दिया आहार... ..

विद्वानों से समाधान की प्रतीक्षा में-

रक्षाबंधन कथा की विसंगतियाँ- ....जिज्ञासु भी हुकमचंद सपिलीय, पाटन,

रक्षाबन्धन पर्व पर प्रतियचे जैन मन्दिर में रक्षाबन्धन कथा (लेखक-स्वर्गीय कवि मुंशी नाथूराम लमेचु) पड़ी जाती है। इस कथा के कथानक पर विचार करने से उसमें ऐसा विसंगतियों मिलती हैं जो जैन वाङ्गमय के अनुकूल प्रतीत नहीं होती है। इससे ऐसा भी लगता है कि यह कथा जेन साहित्य में कहीं है या नहीं? यदि यह कथा जेनागम के विपरीत निरूपण करती है तो इसे जैन इतिहास में समाहित क्यों हो गई है?

विद्वज्जनों से एक जिज्ञासु पाठक के नाते निवेदन है कि वे कथा में आई इन विसंगतियों का स्पष्टीकरण करें ताकि शंकाओं का समाधान हो सके।

"कथा में आई विसंगतियाँ"

१. "उज्जयनी में पहुंच कर श्री अकम्पनाचार्य ने वहाँ के ब्राह्मण मंत्रियों को जैनधर्म विद्वेषी जानकर, राजा और मंत्रियों को उनके दर्शनार्थ आगमन पर मौन धारण करना उचित समझा।" जब कि जैन मुनि समता सब जीवों के प्रति समान रूप से रखते हैं तो क्या उनका ऐसा आचरण जेन सिद्धान्त से मुनिधर्म के अनुकूल रहा ?
समाधान – नहीं देश काल के अनुसार श्री संघ विसंवाद को टालते हैं और पात्र जीवों से ही चर्चा व्यापार करते हैं।

२. "जब ७०० मुनियों में ६९९ मुनि वहीं उपस्थित थे, तो एक मुनि श्री श्रुतकीर्ति जी ही क्यों उस समय आहार लेने नगर में चले गये थे ?"
समाधान – सारे मुनि एक ही स्थान पर नहीं होते हैं, आसपास के ग्रामों में भी चर्या एवं साधना रत रहते हैं। उस समय संवाद साधन आज जैसे नहीं थे। अतः संवाद न हो पाने का आश्चर्य नहीं हैं।

३. "कथा में है कि जब मुनियों ने राजा को आते देखा तो सब सुनि नासाग्रदृष्टि से ध्यान लगाकर बैठ गये।" क्या वास्तव में आगन्तुकों से मयमीत अवस्थामें लगाये गये ध्यान से चित्त में शांति उत्पन्न हो रही होगी ?
समाधान – ३ कषाय चौकड़ी के अभाव में सब कुछ सम्भव हैं। कथाएं उपदेश शैलियों में लिखी जाती हैं। भय नहीं है, यहाँ उलझना नहीं हैं अतः मौन एवं ध्यान में निमग्न हो गये।

४. जैन इतिहास में एक कथा यशोधर मुनि की भी है। राजा श्रेणिक ने उनके गले में मृत सर्प डाल दिया था और उनकी रानी चेलना ने उसे निकाल कर सुनिराज की वैयावृत्ति की थी। समाधि छोड़ने पर मुनिराज ने उपसर्ग करने वाले राजा श्रेणिक और वेयावृति करने वाली रानी चेलना को समान रूप से धर्मवृद्धिताम का आशीष दिया था।

"यहाँ रक्षाबन्धन कथा कहती है कि राजा ने प्रणाम किया किंतु मुनियों में से किसी ने आशीर्बीचन देनेकी कृपा नहीं की।" क्योंकि सभी तब तक ध्यान लगाये बैठे रहे जब तक आगन्तुक निराश होकर चले नहीं गये। क्या यह कार्य जैन मुनियों के योग्य रहा ?

समाधान – केवली के भी औदयिक भाव नहीं मिलते तो हम मुनियों के कैसे मिला सकते हैं ? ना ना जीव ना ना लब्धि... आगम से मुनिराज आशीष देने या उपदेश देने को बाध्य नहीं हैं। चेलना ने मुनिराज को नहीं छुआ उने अभय कुमार के होते हुए मुनिराज को स्पर्श करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। जंगल में राजा कभी भी अकेले नहीं जाता है उसका रक्षक समूह अमात्य पुरोहित सलाहकार भी साथ जाते हैं।

५. कथा में आगे वर्णन है कि "मंत्रियों ने रास्ते में आते श्रुतकीर्ति मुनि को देखकर व्यंग बचन कहे।" उत्तर में सुनिराज ने भी ऐसे भंड बचन उन्हें कहे जो जैन मुनि द्वारा कहे जाने योग्य कमी भी स्वीकार नहीं किये जा सकते। वास्तव में तो मुनिराज को उन्हें समताभाव धारण कर समझाना था अथवा अपने गुरुदेव के समान वे भी पलायन कर जाते।

समाधान – कथा लेखक की यहाँ भूल है। बचाव पलायन नहीं हैं। जानबूझकर अपात्र जीवों से संकट मूल न लेना पलायन नहीं कहलाता है।

६. आगे कथन है कि "अपने अपमान से क्षुब्ध मंत्रियों द्वारा जब रात्रि में एक साथ सुनि पर तलवार से प्रहार किया तो वनरक्षक देव ने उन्हें तत्काल कील दिया।" आगे ध्यान दीजिये कि जब गजपुर में ७०१ मुनियों पर उपसर्ग हुआ तो वहाँ वन रक्षक देव की नींद नहीं खुली। ऐसा क्यों हुआ?

समाधान – उदय की विचित्रता है। पुण्योदय बिना पापोदय में कोई सहाय का निमित्त नहीं बनता है। गर्भ जन्म कल्याणक मनाने बाले इंद्र आदिनाथ के आहार की व्यवस्था एवं पार्श्व नाथ महावीर स्वामी के उपसर्ग निवारण नहीं करते हैं तो इसमें किसी का क्या दोष हैं ?

७. गजपुर का राजा पद्मराज बहुत ही अधिक मूर्ख या चतुर रहा होगा, जिसने नौकरी के लिए आये बलि आदि चारों को बिना योग्यता की किसी जांच, पूर्व के प्रमाण पत्रों आदि के बिना ही तत्काल मंत्रीपद सौंप दिया ?

समाधान – लेखक संक्षेप में लिखता है, खुश किये बिना मंत्री पद नहीं मिला है। राजा की शर्तें पूर्ण करने के बाद पुरुष्कार स्वरूप अमात्य पद मिला है।

८. राजा सिंहवल भी बहुत अधिक मूर्ख रहा होगा जो कि अपनी बहुत बड़ी सेना के द्वारा राजा पद्मराज को हराते रहने का साहस रखता था, यह बलीमंत्री के भूलावे में तत्काल आ गया।

समाधान – युक्ति बल पुण्योदय का जोर पाकर किसका सफल नहीं होता है ?

"सबसे बड़ी विसंगति"

९. इस कथा की सबसे बड़ी विसंगति का मुलाहजा कीजिए- 'जैनागम में स्पष्ट उल्लेख है कि मुनि आदि चातुर्मास ग्रहण करने के लिए बाध्य हैं और चातुर्मास में विहार नहीं करते। फिर श्री अकम्पनाचार्य आदि ७०१ मुनि कैसे वर्षा काल में राजपुर पहुंचे। क्योंकि जिस दिन वे पहुंचे, बली मंत्री को पता चला और उसने तत्काल राजा से ७ दिन का राज्य मांगा। राज्य पाते ही मुनियों पर घोर उपसर्ग किया। मुनियों पर हो रहे उपसर्ग के कारण श्रवण नक्षत्र कम्पायमान हुआ? जिसके कारण विष्णुकुमार सुनि तक खबर पहुंची और वे तत्काल आये, अपने नाटक के द्वारा उपसर्ग दूर किया उस दिन श्रावण सुदी १५ थी। अर्थात् क्या श्रावण सुदी १४ को बिहार करते हुए सुनिसंघ गजपुर पहुंचा ?' वर्षा काल में कैसे ?

समाधान – कथा लेखन संक्षिप्त में होता है विस्तार से पढने के लिए वर्तमान लेखन पढ़िये।

१०. 'उज्जैन पहुंचते ही तो श्री अकम्पनाचार्य जी को पता चल गया था शायद अवधिज्ञान के द्वारा कि यहाँ के मंत्री जैन धर्म विरोधी हैं. तो गजपुर पहुंच कर मी उन्हें ऐसा ही पता क्यों नहीं चल पाया?

समाधान – होनहार में उपयोग काम नहीं करता। अवधिज्ञान का प्रयोग सदा करें ऐसा आवश्यक नहीं हैं। ऐसे तो वे उज्जैन में भी प्रवेश न करते। हस्तिनापुर में जैन राजा का राज्य था तब तक मंत्रियों के दुराचार, जैन

धर्म का विरोध श्रवण में भी नहीं आया था, शान्ति से राज्य चल रहा था अतः विचार करने का कोई अवसर न जानकर अवधि ज्ञान न लगाया हो ऐसा सम्भव हैं।

११. 'कुरुवंश शिरोमणि राजा पद्मराज मी ऐतिहासिक महापुरुष थे कि उनके ७०१ धर्मगुरुओं के प्राण संकट में पड़ गये और वे अपने वचन में बंधे चुपचाप महल में पढ़े रहे।'

समाधान – आप वचन की कीमत, राज दंड धारण का महत्व, छल-प्रपंच का महत्व,और कर्म उदय में तर्क की नहीं चलती है। इतनी बातों का भी विचार कीजिए।

१२.उस समय के गजपुर के जैन श्रावक भी महान् धार्मिक रहे होंगे कि जिनके ७०१ धर्म गुरुओं के नरमेघ में राज्यसत्ता के द्वारा जलाया जा रहा हो वे केवल खानापीना छोड़कर दृढ़ निश्चय कर निष्क्रिय होकर परों में बैठे रहे। स्वयं उस यज्ञ में बलिदान होने की भावना किसी एकाध में भी नहीं आई?

समाधान – वर्तमान कथा में इसका समाधान हैं।

१३."तारा, नक्षत्र आदि दुःख से कम्पायमान होते हैं यमान होने की ऐसी दूसरी भी मानयों पर पड़े क्या तारा कम्पायमान होने की कोई मिसाल इतिहास पुराणों में है?

समाधान – सामुद्रिक शास्त्र, निमित्त ज्ञान को बताता है। ज्योतिष देव भी इनका आधार होता है।

१४."जब विष्णुकुमार मुनि आये, राजा पद्मराज को डाँटा तो यह धर्मभीरु और बचनबद्ध राजा मुनियो की रक्षा हेतु अपना वचन भंग कर सकता था। ७०१ मुनियों की प्राण रक्षा उसके बचन से कहीं कम कीमत की थी क्या ?"

समाधान – उत्तर पूर्व में दे चुके हैं।

१५.श्री विष्णुकुमार सुनि उपसर्ग दूर करने आये, सीधे अपनी विक्रिया से उपसर्ग दूर कर देते। क्या आवश्यकता थी यह सब नाटक करने की? ५२ अंगुल का शरीर बना कर बली के यज्ञ स्थल पर पहुँचे, दान माँगा, झूठ बोले, अपने नाप से तीन पग धरती मांगी, साधु वेष की प्रतिष्ठा और अपनी दान की प्रवृत्ति से बली ने तीन पग पृथ्वी देना स्वीकार तो की पर राज्य तो उसके पास केवल सात दिन के लिए था, सदेव के लिए तीन पग धरती देने का उसे भी क्या अधिकार था ? समाधान – भवितव्य अनिवार होने से उसमें तर्क काम नहीं आता है। जिन शासन प्रभावना में क्रमबद्ध इस ही प्रकार होना था। राज्य का मतलब ही यह होता है वह उन दिनों में जो भी कार्य करेगा वह सब राज मान्य माना जाएगा। शेष वर्तमान कथा से समझ सकते हैं।

१६. फिर मुनिजी ने विक्रिया से अपना शरीर विशाल बनाया और पहला पग सुमेरु पर्वत परऔर दूसरा पग मानुषोत्तर पर्वत पर रख कर पूरी पृथ्वी दो डग में नाप ली। और एक पग पृथ्वी की माँग की। "विचारणीय बात है कि बलि को सात दिन के लिए मिला राज्य केवल गजपुर का था पूरे भरत खंड का भी नहीं, जम्बूद्वीप का भी नहीं। तब उसके राज्य के बाहर की भूमि मुनि जी द्वारा क्यों नाप ली गई?"

समाधान – वर्तमान कथा से समझ सकते हैं। आप मान सकते हैं कि उस ही दिन भारत में इस ही प्रकार की कथा चलती है अतः लेखक ने उस का जैनीकरण कर दिया हो।

१७.इतना ही नहीं श्री विष्णुकुमार सुनि ने कहा कि एक पग घरती और दो। तब बाली बोला पृथ्वी तो अब नहीं है। मेरी पीठ पर ही पैर रखो। "क्या उसकी पीठ सुमेरु और मानुषोत्तर के बाहर थी? तब नपी नपाई जगह की बस्तु पुनः नापने की मुनि जी को क्या आवश्यकता थी?" फिर मी मुनि जी ने बली की पीठ पर अपनी वह विशाल डग रखी। इतने विशाल पैर का कितना तो बजन रहा होगा? पर बाह रे ! बली... महावली प्राण नहीं निकले उसके, केवल थर-२ काँपने भर लगा वह वीर।

"बली के घर-थर काँपने से देवों के आसन डोल उठे।"

७०१ मुनियों के नरमेध पर आइये पुनः विसंगति क्रमांक ९ के अनुसार विचार करते हैं ७०१ मुनियों पर उपसर्ग होने पर वन रक्षक, नगर रक्षक देव, असुर और नारद आदि किसी की भी नींद नहीं खुली, किसी के कानों जू तक नहीं रेंगी और धर्म विद्वेपी नर संहारक बाली के थर-थर काँपने से सब के आसन डोल गये और सब नंगे पायन दौड़ पड़े बेचारे और लगे बलि की बकालत करने।"

समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

१८....लगे-त्राहि-त्राहि करने, रक्षा करो, रक्षा करो कहने। मुनि जी ने उपसर्ग दूर करने के लिए यह जो इतना नाटक रचा था, उसके पीडित पात्र ७०१ सुनि तो अमी मी नरमेध यज्ञ में फंसे थे। किन्तु उसके इस महान अपराध को महामुनि जी ने सब की सिफारिश पर तत्काल क्षमा कर दिया? क्या बलि को उसके दुष्कृत्य का दण्ड प्राप्त हो गया ?
समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

१९. कथा के अनुसार तब वह कायर (वा बीर) राजा पद्मराय आया और उसने बलि को उसके दुष्कृत्य के लिए दगड देने की बात कही। क्यों? अभी तो राज्य सात दिन के लिए बलि के हाथ में था, जो वचन वह कायर राजा, मुनियों पर हो रहे उपसर्ग के समय अपने वचन की आड़ में अपने महल में गुलछर्रे उड़ाता रहा उसे अभी बलि फो दण्ड देने का अधिकार कहाँ से मिल गया ?
समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

२०. जैन मुनियों के चरित्र की इतनी बड़ी विकृति शायद और किसी कथा में न लिखी होगी जैसी इस कथा में वर्णित है "यज्ञ के धुएं के कारण सब मुनियों के गले फट गये थे, आँखों से पानी बह रहा था। वेसुध पड़े थे, श्रावकों ने उसका उपचार किया। और वे ही मुनि सचेत होने के बाद तत्काल ही नगर में आहार लेने के लिए चल पड़े?" जैन साधु तो कितने अन्तराय बचाकर भोजन ग्रहण करता है, हम आप की जरा सी बीमारी में उपवास कर लेते हैं पर वे सबके सब सचेत होते ही चल दिये आहार लेने।
समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

२१. कथा में तो लेखक ने सिवइयों का आहार लेना वर्णित किया है। जेनी तो बरसात में सिंवइयों खाते ही नहीं। बासी खिलाने का प्रश्न नहीं है। शायद तत्काल ताजी बना लीं होंगी पर बड़ी अटपटी बात है कि जले, आहत और घायल साधुओं को और कोई दूसरा लेय, पेय, खाद्य पदार्थ गजपुर के श्रावकों को बनाना न आया, मिली केवल सिवइयाँ।
समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

२२. कथा की अन्तिम बेतुकी बात का और मुलाहिजा कीजिये-"अन्त में सब आवकों ने बड़े प्रेम से परस्पर एक दूसरे के हाथों में रक्षा सूत्र बाँधा।" मैं पूछता हैं कि यह रक्षा सूत्र काहे के लिए बाँधा १ उन शुरवीर बावकों के धर्म गुरु जब नरमेध यज्ञ में जीवित जलाये जा रहे ये तव घरों में भूखे दुबके रहे आने के सिवाय उन्होंने कौन सी कुर्यानी की थी? परस्पर रक्षासूत्र बाँधने में क्या तुक रहा?
समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

२३. कहीं ऐसा तो नहीं है कि "रक्षा बन्धन पर्व" को "जेन पर्व" बना डालने की धुन में लेखक ने वैदिक मत के 'बामन अवतार" की कथा को जैन कथा का यह विकृत एवं विसंगत रूप दे दिया है? यदि नहीं तो जैन विद्वान इस कथा की विसंगतियों का निराकरण करने की कृपा करें।
समाधान – वर्तमान कथा पढ़िये।

जय – जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के रक्षणहार।

१- दुष्ट बली जब कुमति उपाई, संघ घेर नरमेघ रचाई। मच गया गज पुर हाहा कार...

२- संघ उपसर्ग की खबर सु-पाकर, पुष्पदंत मुनि अतिघबराकर। आकर तुमसे करी पुकार... ...

३- गुरु तुम वीतरागता धारी, विक्रिया ऋद्धि प्रगट भई भारी। उमड़ा वात्सल्य सुखकार...

४- बौने द्विज का वेष बनाया, चमत्कार तप का दिखलाया। पड़ गया नृप बली चरण मंझार... ...

५- मुनियों का उपसर्ग मिटाया, सबको दया धर्म सिखलाया। हुआ जिनधर्म का जय जयकार...

६- क्षमा भाव धरि बलि को छोड़ा, उसने हिंसा से मुख मोड़ा। धारा जैन धर्म सुखकार...

७- सर्व जनों में आनंद छाया, रक्षाबंधन पर्व मनाया। हर्षित होय दिया आहार... ..